नूपुर – 2020

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के
127वें जन्मोत्सव पर
स्मारिका-रूप में कतिपय 'नूपुर'

श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट
(श्री म ट्रस्ट)

कार्यालय : 579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ 160 018
फोन 0172-2724460
मो० 08427999572

मन्दिर : श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत पीठ (श्री पीठ)
सैक्टर 19-डी, चण्डीगढ़ 160019

website : http://www.kathamrita.org
email : srimatrust@yahoo.com

"लोग जान ही नहीं सकते कि कितना नीचे उतर गए हैं।... किले में जब गाड़ी द्वारा पहुँच गया तब बोध हुआ जैसे साधारण रास्ते से आया हूँ। उसके बाद देखता हूँ कि चार मञ्जिल नीचे आ गया हूँ— कलमबाड़ा (sloping) रास्ता।"

— श्री श्री रामकृष्ण कथामृत 4:13:2,
25 मई, 1884

© श्री म ट्रस्ट

गंगा दशहरा, 1 जून, 2020

सम्पादन	:	डॉ० (श्रीमती) निर्मल मित्तल
सहायता	:	डॉ० नौबतराम भारद्वाज सन्दीप नांगिया
प्रकाशन	:	अध्यक्ष श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट) 579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़-160 018 फोन - 0172-2724460, मो० 08427999572
आवरण चित्र	:	Reimphoto, Stock photo ID: 486632386, licensed via istockphoto.com
मुद्रण	:	प्रिंट लैण्ड, कश्मीरी गेट, दिल्ली - 110006

समर्पण

कथामृतकार श्री 'म' की सेवक-सन्तान
स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज को
जो
श्री म दर्शन-ग्रन्थमाला के माध्यम से
श्रीरामकृष्ण-कथा को,
कथामृत में कही-अनकही ठाकुर-वाणी को
हम तक लाए।

'नूपुर' नाम क्यों?

ठाकुर दक्षिणेश्वर में नरेन्द्र, भवनाथ आदि भक्तों के संग में हैं।

ठाकुर गाना गा रहे हैं—

बोल रे श्रीदुर्गा नाम।
(ओ रे आमार आमार आमार मन रे)।
...
यदि बोलो छाड़ो-छाड़ो मा, आमि ना छाड़िबो।
बाजन नूपुर होये मा तोर चरणे बाजिबो॥*[1]

दीदी जी (श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता) कहा करतीं कि ठाकुर-वाणी का अक्षर-अक्षर है 'नूपुर'। इन 'नूपुरों' की झंकार से सब पाठक ठाकुर का शुद्ध प्यार पाएँ, इस अभिलाषा से ही उन्होंने अपने गुरु महाराज के 101वें जन्म-दिन पर सन् 1994 में स्मारिका-रूप में वार्षिक पत्रिका का प्रारम्भ 'नूपुर' नाम से किया था। उनका विश्वास था कि ठाकुर-वाणी के पठन-श्रवण-मनन और पालन से व्यक्ति स्वयं बन जाता है माँ के चरणों का 'नूपुर'।

---

[1] ओ मेरे मन, तू दुर्गा-दुर्गा नाम बोल। ... यदि कहो छोड़, छोड़, किन्तु मैं नहीं छोड़ूँगा। हे माँ, मैं तेरे चरणों का नूपुर बनकर बजूँगा।]

— कथामृत भाग II, सप्तदश खण्ड, द्वितीय परिच्छेद, 19-09-1884

विषय-सूची

	निवेदन	…	7-8
1.	Sri Ramakrishna as the Sikh Guru Nanak	…	11
2.	The Blissful Devotee and His Cosmic Romance	…	15
3.	मास्टर महाशय के सदुपदेश	…	25
4.	अमरीका में उड्डीयमान ध्वज पर नाम : श्री रामकृष्ण	…	53
5.	'Bada Ghara ra Dasi' A Rich Man's Maid	…	89
6.	Hold on Yet a While, Brave heart	…	97
7.	Teachings of the Direct Disciples	…	99
8.	ईश्वर को साथ रखना	…	101

●

श्री 'म' ट्रस्ट

श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत के प्रणेता श्री महेन्द्रनाथ गुप्त, बाद में मास्टर महाशय वा श्री 'म' (M.) के नाम से विख्यात हुए।

इन्हीं श्री म के अन्तरंग शिष्य थे स्वामी नित्यात्मानन्द जो 'श्री म दर्शन' ग्रन्थमाला के प्रणेता हैं। और वे ही हैं श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट) के संस्थापक।

अपने जीवन में ठाकुर-वाणी का पालन व प्रचार-प्रसार करने वाले श्री 'म' के पास दीर्घकाल तक रहकर स्वामी नित्यात्मानन्द जी को विश्वास हो गया था कि जगत् के सकल काम-काज करते हुए भी मन से ईश्वर के साथ रहा जा सकता है और यही है शाश्वत शान्ति तथा परमानन्द का सहज, सरल उपाय। परमानन्द की प्राप्ति ही है मनुष्य-जीवन का एकमात्र उद्देश्य। इसी परमानन्द की प्राप्ति जन-जन को हो, इस उद्देश्य से स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने अपने प्रथम गुरु श्री 'म' की स्मृति में 12 दिसम्बर सन् 1967 को श्री 'म' ट्रस्ट (श्रीरामकृष्ण श्री 'म' प्रकाशन ट्रस्ट) को रोहतक में रजिस्टर करा दिया था जो बाद में चण्डीगढ़ ले आया गया। तब से लेकर आज तक ठाकुर-कृपा से ठाकुर-वाणी के प्रचार-प्रसार का कार्य निरन्तर चल रहा है और आगे बढ़ रहा है।

श्री 'म' ट्रस्ट से जुड़े ठाकुर-भक्तों/सेवकों पर ठाकुर इसी तरह अपना शुद्ध प्यार बनाए रखें, यही उनके श्री चरणों में प्रार्थना है।

— अध्यक्ष, श्री 'म' ट्रस्ट

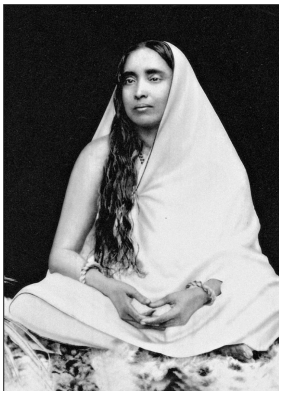

माँ सारदा

निवेदन

माँ की वाणी है : "मनुष्य-जन्म में कोई आनन्द नहीं है। संसार दु:खों से भरा हुआ है। पति कहो, पुत्र कहो, शरीर कहो— सब माया है। ये सब माया के बन्धन हैं। इन्हें काटे बिना पार होना सम्भव नहीं है। आखिरी माया है देह की— देहात्म बुद्धि। अन्त में इसे भी काटना होगा। देह भला क्या है?— मुट्ठी भर राख ही तो! उसका फिर गर्व क्या करना? कितनी भी बड़ी देह हो, जलने के बाद डेढ़ सेर राख ही तो बचती है।"

ठाकुर जी ने तो कहा ही है— संसार ज्वलन्त अनल।

इधर आचार्य शङ्कर भी कह रहे हैं : "जीवन कमल-पत्र पर पड़ी हुई जल की बूँदों के समान अनिश्चित एवं अल्प (क्षणभंगुर) है।" (भजगोविन्दम्-4)

आज जब पूरा विश्व कोरोना नामक महामारी से जूझ रहा है, ये सभी वचन कितने सत्य प्रतीत हो रहे हैं! दरअसल इस महामारी ने परिवार-संस्था को ही चुनौती दे डाली है। मानवता/मनुष्यता पर प्रश्न चिह्न लगा है। मानव मानव से भयभीत है। एक-दूसरे पर विश्वास ही नहीं रहा। बीमारी से आत्मरक्षा वा पारिवारिक जन की रक्षा के लिए मनुष्य भगवान को चाहे पुकारता तो है पर भगवान में विश्वास नहीं करता।

इधर माँ सारदा आश्वासन देते हुए कह रही हैं : "अगर कोई भगवान की शरण में जाता है तो उसकी नियति का लेखा भी कट जाता है। नियति स्वयं अपने हाथों से ऐसे भक्त के विधान को मिटा देती है।" माँ की इस भरोसे की वाणी का ज्वलन्त उदाहरण देख लीजिए। घटना जून, 2020 के प्रथम सप्ताह की है।

"श्री प्रबल बनर्जी, ट्रायो प्रेस के प्रोपराइटर (जो एफसीपीआरटीए अद्वैत आश्रम की किताबें और कई सारदा मठ की किताबें भी छापते हैं) कोरोना से ग्रस्त हो गए। उनके फेफड़ों का 75% हिस्सा अवरुद्ध हो गया। डॉक्टरों ने कहा कि अब तो केवल चमत्कार ही उन्हें बचा सकता है। वे भयानक दर्द से कराह रहे थे। दिन-रात माँ सारदा देवी से रोते हुए प्रार्थना करते रहे कि अब वह इस दर्द को और अधिक सहन नहीं कर सकते। अस्पताल में उन्हें एक सप्ताह के बाद विभिन्न परीक्षणों के लिए ले जाया गया। और माँ की कृपा से कोविड नकारात्मक (negative) पाया गया। उन्होंने बताया कि एक बूढ़ी औरत उनके कमरे में आई और उनके बिस्तर के पास बैठ गई। उन्होंने सोचा कि कोई नर्स होगी किन्तु वह बिना मास्क के रोगी के पास कैसे आ सकती हैं। रोगी ने अगले दिन अपने को बेहतर पाया। उन्हें यह समझने में देर नहीं लगी कि माँ सारदा ने ही उस बूढ़ी औरत के रूप में आकर उनके जीवन की रक्षा की है।...." [1]

यह आश्चर्य ही नहीं, विश्वास की बात है। 100% विश्वास हो। बल्कि ठाकुर तो कहते थे— पाँच चवन्नी पाँच आना[2] विश्वास चाहिए।

कोरोना के कारण सभी कार्य रुके रहे। नूपुर-कार्य भी रुका रहा। जब कुछ सुभीता हुआ तो कार्य तनिक आरम्भ हुआ। सो प्रस्तुत है वर्ष 2020 का नूपुर भक्तों के लिए, देर से ही सही।

जय माँ ठाकुर!

डॉ० (श्रीमती) निर्मल मित्तल
सम्पादक

---

[1] रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर के अध्यक्ष स्वामी जी ने भावप्रचार परिषद् के वाट्सैप ग्रुप में इसे सांझा किया था।

[2] एक रुपया = चार चवन्नी या 16 आना।

अन्दर से श्री पीठ का मन्दिर

श्रीरामकृष्ण परमहंस

- जन्म : 18 फरवरी, सन् 1836 ईसवी।
- स्थान : कामारपुकुर (हुगली जिले का अन्तर्वर्ती ग्राम)
- माता-पिता : श्रीमती चन्द्रमणि देवी और श्री क्षुदिराम चट्टोपाध्याय (चटर्जी)।
- भाई-बहन : दो बड़े भाई, दो बहनें।
- शिक्षा : कुछ दिन पाठशाला में गए। प्रारम्भ से ही अर्थकरी विद्या से विकर्षण। स्कूल से भागे रहते। लेख सुन्दर। अद्‌भुत स्मरण-शक्ति।
- विवाह : 22-23 वर्ष की आयु में सन् 1859 में 6-7 वर्षीय सारदा मणि के साथ।
- दक्षिणेश्वर-वास : बड़े भाई रामकुमार की मृत्यु के बाद दक्षिणेश्वर में पुजारी। बाद में पूजा-कर्म से निवृत्त होकर वहीं दक्षिणेश्वर में स्वतन्त्र वास— प्राय: अन्त समय तक।
- महासमाधि : 16 अगस्त, 1886 ईसवी।

●

Sri Ramakrishna as the Sikh Guru Nanak

Swami Chetanananda

[This extract has been taken from Sw. Chetanananda's book "How to Live With God: In the Company of Ramakrishna", Advaita Ashrama 2008. Ch. 1 "Various Forms of Ramakrishna", "Ramakrishna as the Sikh Guru Nanak", pp. 56-58]

Sri Ramakrishna also showed much reverence the ten Gurus of Sikhism. But he did not speak of them as Divine Incarnations of Vishnu. He used to say that the Gurus of Sikhism were the reincarnations of King Janaka of ancient India.

Ramakrishna heard about Buddha, the Jain Mahavir, and Shankara and based some of his teachings upon their messages. The Master remarked about Buddha: ''Buddha was definitely an incarnation of God. There is no difference between his religion and the Vedic path of knowledge". In the Master's room at Dakshineswar there were a stone image of Mahavir Tirthankar and a portrait of Christ; the Master would wave incense before both of them. Although he adored and respected them, he never said that the tirthankaras in Jainism and the ten gurus in Sikhism, from Nanak to [Guru] Govinda, were incarnations of God. About the ten gurus of Sikhism, the Master said: ''They are all incarnations of the sage Janaka. I heard from some Sikhs that the royal sage Janaka had a desire to do good to humanity before he attained liberation. That is why he was born ten times as ten gurus from Nanak to [Guru] Govinda, established religion among the Sikhs, and then merged forever into the Supreme Brahman. There is no reason to disbelieve this statement of the Sikhs".

It is mentioned in the Ramakrishna literature that Rama, Krishna, Jesus, Chaitanya and others merged into the Master's body. But there is no mention of Buddha, Mahavir, Muhammad, Nanak, or Shankaracharya merging into him. During the Master's time, there was a government magazine at the north side of the Dakshineswar temple garden. A group of Sikh soldiers were stationed there to protect it. Sometimes they would come to the Master for spiritual advice, and at other times they would invite him to their quarters for food. Swami Ambikananda said: ‘‘The Sikh guards of the magazine first called the Master ‘‘Paramahamsa”. The Master would joyfully move around the bel tree, naked. The people of the Punjab are very devoted to monks, and they serve holy people with great respect. Observing the Master's exalted state, they remarked: “Look, this man is a Paramahamsa!” From that time on the Master had the name “Ramakrishna Paramahamsa”.

Once the Master said: “I have practised all kinds of sadhana: Jnana Yoga, Karma Yoga, and Bhakti Yoga. I have even gone through the exercises of Hatha Yoga to increase longevity. There is another Person dwelling in this body. Otherwise, after attaining Samadhi, how live with the devotees and enjoy the love of God? Koar Singh used to say to me: “I have never before seen a person, who has returned from the plane of Samadhi. You are none other than Nanak”.

One day the Master went to the Sikhs' quarters with Narayana Shastri. The men were delighted to see that the Master had come of his own accord. They bowed down to him, and sat to hear him talk about spiritual matters. The Master spoke, and they listened. However, Narayana Shastri interjected some words about Jnana (Knowledge) into the Master's discourse. Akshay Sen wrote: “The soldiers were

angered by this, and threatened Narayana Shastri with a sword. They told Shastri: “You are a worldly householder— you have no right to talk about Knowledge”. Then the Master calmed those angry Sikhs with sweet words The following incident took place sometime earlier. The uniformed Sikh regiment was marching to the Calcutta fort under the guidance of a British commander, when the Master was passing by with Mathur in his horse carriage. Seeing the Master on the street, the soldiers dropped their guns on the ground and bowed down to the Master, saying: “Victory to the guru”. Such actions were not acceptable under military rules and would be considered a grave offence. Akshay Sen wrote: “The commander asked the soldiers: “Why have you dropped your arms without permission?” They replied: “It is the custom of our religion to respect the guru. We don't care whether we lose our lives, but we must bow down to our guru when we see him”. The Master blessed those soldiers by raising his hand. It was by the Master's grace that the British commander did not say a single word more to them”.

•

श्री म (मास्टर महाशय)

- पूरा नाम : श्री महेन्द्रनाथ गुप्त
- जन्म : शुक्रवार, नाग पञ्चमी, 31वाँ आषाढ़, 14 जुलाई, 1854 ईसवी।
- स्थान : कोलकता में शिमुलिया मोहल्ले की शिवनारायण दास लेन।
- माता-पिता : श्रीमती स्वर्णमयी देवी और श्री मधुसूदन गुप्त— वैद्य ब्राह्मण वंश।
- भाई-बहन : 4 भाइयों और 4 बहनों में तीसरी सन्तान।
- विवाह : सन् 1873 में श्रीमती निकुञ्ज देवी के साथ।
- शिक्षा : - सन् 1867 में आठवीं कक्षा से डायरी लेखन।
  - हेयर स्कूल से दसवीं की परीक्षा में द्वितीय स्थान।
  - गणित का एक पेपर न दे सकने पर भी एफ.ए. में 5वाँ स्थान।
  - सन् 1875 में प्रेजिडैंसी कॉलेज से बी.ए. में तृतीय स्थान।
  - पूर्वी और पश्चिमी विद्याओं में निपुणता।
- गुरु : श्रीरामकृष्ण परमहंस
- गुरु-लाभ : 26 फरवरी, सन् 1882 को रविवार के दिन।
- महासमाधि : शनिवार, 4 जून, सन् 1932 ईसवी को प्रात: 5.30 बजे।

The Blissful Devotee and His Cosmic Romance

Paramhansa Yogananda

[This article has been taken from Parmhansa Yogonanda's book 'An Autobiography of a Yogi', Chapter 9, ed. 1946. It shows the interaction that Paramhansa Yogananda had with Shri Mahendernath Gupt.]

"Little sir, please be seated. I am talking to my Divine Mother."

Silently I had entered the room in great awe. The angelic appearance of Master Mahasaya fairly dazzled me. With silky white beard and large lustrous eyes, he seemed an incarnation of purity. His upraised chin and folded hands apprized me that my first visit had disturbed him in the midst of his devotions.

His simple words of greeting produced the most violent effect my nature had so far experienced. The bitter separation of my mother's death I had thought the measure of all anguish. Now an agony at separation from my Divine Mother was an indescribable torture of the spirit. I fell moaning to the floor.

"Little sir, quiet yourself!" The saint was sympathetically distressed.

Abandoned in some oceanic desolation, I clutched his feet as the sole raft of my rescue.

"Holy sir, thy intercession! Ask Divine Mother if I find any favor in Her sight!"

This promise is one not easily bestowed; the master was constrained to silence.

Beyond reach of doubt, I was convinced that Master Mahasaya was in intimate converse with the Universal Mother. It was deep humiliation to realize that my eyes were blind to Her who even at this moment was perceptible to the faultless gaze of the saint. Shamelessly gripping his feet, deaf to his gentle remonstrances, I besought him again and again for his intervening grace.

"I will make your plea to the Beloved." The master's capitulation came with a slow, compassionate smile.

What power in those few words, that my being should know release from its stormy exile?

"Sir, remember your pledge! I shall return soon for Her message!" Joyful anticipation rang in my voice that only a moment ago had been sobbing in sorrow.

Descending the long stairway, I was overwhelmed by memories. This house at 50 Amherst Street, now the residence of Master Mahasaya, had once been my family home, scene of my mother's death. Here my human heart had broken for the vanished mother; and here today my spirit had been as though crucified by absence of the Divine Mother. Hallowed walls, silent witness of my grievous hurts and final healing!

My steps were eager as I returned to my Gurpar Road home. Seeking the seclusion of my small attic, I remained in meditation until ten o'clock. The darkness of the warm Indian night was suddenly lit with a wondrous vision.

Haloed in splendor, the Divine Mother stood before me. Her face, tenderly smiling, was beauty itself.

"Always have I loved thee! Ever shall I love thee!"

The celestial tones still ringing in the air, She disappeared.

The Sun on the following morning had hardly risen to an angle of decorum when I paid my second visit to Master Mahasaya. Climbing the staircase in the house of poignant memories, I reached his fourth-floor room. The knob of the closed door was wrapped around with a cloth; a hint, I felt, that the saint desired privacy. As I stood irresolutely on the landing, the door was opened by the master's welcoming hand. I knelt at his holy feet. In a playful mood, I wore a solemn mask over my face, hiding the divine elation.

"Sir, I have come—very early, I confess!—for your message. Did the Beloved Mother say anything about me?"

"Mischievous little sir!"

Not another remark would he make. Apparently my assumed gravity was unimpressive.

"Why so mysterious, so evasive? Do saints never speak plainly?" Perhaps I was a little provoked.

"Must you test me?" His calm eyes were full of understanding. "Could I add a single word this morning to the assurance you received last night at ten o'clock from the Beautiful Mother Herself?"

Master Mahasaya possessed control over the flood-gates of my soul: again I plunged prostrate at his feet. But this time my tears welled from a bliss, and not a pain, past bearing.

"Think you that your devotion did not touch the Infinite Mercy? The Motherhood of God, that you have worshiped in forms both human and divine, could never fail to answer your forsaken cry."

Who was this simple saint, whose least request to the Universal Spirit met with sweet acquiescence? His role in the world was humble, as befitted the greatest man of

humility I ever knew. In this Amherst Street house, Master Mahasaya[1] conducted a small high school for boys. No words of chastisement passed his lips; no rule and ferule maintained his discipline. Higher mathematics indeed were taught in these modest classrooms, and a chemistry of love absent from the textbooks. He spread his wisdom by spiritual contagion rather than impermeable precept. Consumed by an unsophisticated passion for the Divine Mother, the saint no more demanded the outward forms of respect than a child.

"I am not your guru; he shall come a little later," he told me. "Through his guidance, your experiences of the Divine in terms of love and devotion shall be translated into his terms of fathomless wisdom."

Every late afternoon, I betook myself to Amherst Street. I sought Master Mahasaya's divine cup, so full that its drops daily overflowed on my being. Never before had I bowed in utter reverence; now I felt it an immeasurable privilege even to tread the same ground which Master Mahasaya sanctified.

"Sir, please wear this champak garland I have fashioned especially for you." I arrived one evening, holding my chain of flowers. But shyly he drew away, repeatedly refusing the honor. Perceiving my hurt, he finally smiled consent.

"Since we are both devotees of the Mother, you may put the garland on this bodily temple, as offering to Her who dwells within." His vast nature lacked space in which any egotistical consideration could gain foothold.

---

1. These are respectful titles by which he was customarily addressed. His name was MahendraNath Gupta; he signed his literary works simply "M."

"Let us go tomorrow to the Dakshineswar Temple, forever hallowed by my guru." Master Mahasaya was a disciple of a Christlike master, Sri Ramakrishna Paramhansa.

The four-mile journey on the following morning was taken by boat on the Ganges. We entered the nine-domed Temple of Kali, where the figures of the Divine Mother and Shiva rest on a burnished silver lotus, its thousand petals meticulously chiseled. Master Mahasaya beamed in enchantment. He was engaged in his inexhaustible romance with the Beloved. As he chanted Her name, my enraptured heart seemed shattered into a thousand pieces.

We strolled later through the sacred precincts, halting in a tamarisk grove. The manna characteristically exuded by this tree was symbolic of the heavenly food Master Mahasaya was bestowing. His divine invocations continued. I sat rigidly motionless on the grass amid the pink feathery tamarisk flowers. Temporarily absent from the body, I soared in a supernal visit.

This was the first of many pilgrimages to Dakshineswar with the holy teacher. From him I learned the sweetness of God in the aspect of Mother, or Divine Mercy. The childlike saint found little appeal in the Father aspect, or Divine Justice. Stern, exacting, mathematical judgment was alien to his gentle nature.

"He can serve as an earthly prototype for the very angels of heaven!" I thought fondly, watching him one day at his prayers. Without a breath of censure or criticism, he surveyed the world with eyes long familiar with the Primal Purity. His body, mind, speech, and actions were effortlessly harmonized with his soul's simplicity.

"My Master told me so." Shrinking from personal assertion, the saint ended any sage counsel with this

invariable tribute. So deep was his identity with Sri Ramakrishna that Master Mahasaya no longer considered his thoughts as his own.

Hand in hand, the saint and I walked one evening on the block of his school. My joy was dimmed by the arrival of a conceited acquaintance who burdened us with a lengthy discourse.

"I see this man doesn't please you." The saint's whisper to me was unheard by the egotist, spellbound by his own monologue. "I have spoken to Divine Mother about it; She realizes our sad predicament. As soon as we get to yonder red house, She has promised to remind him of more urgent business."

My eyes were glued to the site of salvation. Reaching its red gate, the man unaccountably turned and departed, neither finishing his sentence nor saying good-by. The assaulted air was comforted with peace.

Another day found me walking alone near the Howrah railway station. I stood for a moment by a temple, silently criticizing a small group of men with drum and cymbals who were violently reciting a chant.

"How undevotionally they use the Lord's divine name in mechanical repetition," I reflected. My gaze was astonished by the rapid approach of Master Mahasaya. "Sir, how come you here?"

The saint, ignoring my question, answered my thought. "Isn't it true, little sir, that the Beloved's name sounds sweet from all lips, ignorant or wise?" He passed his arm around me affectionately; I found myself carried on his magic carpet to the Merciful Presence.

"Would you like to see some bioscopes?" This question one afternoon from Master Mahasaya was mystifying; the term was then used in India to signify

motion pictures. I agreed, glad to be in his company in any circumstances. A brisk walk brought us to the garden fronting Calcutta University. My companion indicated a bench near the *goldighi* or pond.

"Let us sit here for a few minutes. My Master always asked me to meditate whenever I saw an expanse of water. Here its placidity reminds us of the vast calmness of God. As all things can be reflected in water, so the whole universe is mirrored in the lake of the Cosmic Mind. So my *gurudeva* often said."

Soon we entered a university hall where a lecture was in progress. It proved abysmally dull, though varied occasionally by lantern slide illustrations, equally uninteresting.

"So this is the kind of bioscope the master wanted me to see!" My thought was impatient, yet I would not hurt the saint by revealing boredom in my face. But he leaned toward me confidentially.

"I see, little sir, that you don't like this bioscope. I have mentioned it to Divine Mother; She is in full sympathy with us both. She tells me that the electric lights will now go out, and won't be relit until we have a chance to leave the room."

As his whisper ended, the hall was plunged into darkness. The professor's strident voice was stilled in astonishment, then remarked, "The electrical system of this hall appears to be defective." By this time, Master Mahasaya and I were safely across the threshold. Glancing back from the corridor, I saw that the scene of our martyrdom had again become illuminated.

"Little sir, you were disappointed in that bioscope[1], but I think you will like a different one." The saint and I were standing on the sidewalk in front of the university building. He gently slapped my chest over the heart.

A transforming silence ensued. Just as the modern "talkies" become inaudible motion pictures when the sound apparatus goes out of order, so the Divine Hand, by some strange miracle, stifled the earthly bustle. The pedestrians as well as the passing trolley cars, automobiles, bullock carts, and iron-wheeled hackney carriages were all in noiseless transit. As though possessing an omnipresent eye, I beheld the scenes which were behind me, and to each side, as easily as those in front. The whole spectacle of activity in that small section of Calcutta passed before me without a sound. Like a glow of fire dimly seen beneath a thin coat of ashes, a mellow luminescence permeated the panoramic view.

My own body seemed nothing more than one of the many shadows, though it was motionless, while the others flitted mutely to and fro. Several boys, friends of mine, approached and passed on; though they had looked directly at me, it was without recognition.

The unique pantomime brought me an inexpressible ecstasy. I drank deep from some blissful fount. Suddenly my chest received another soft blow from Master Mahasaya. The pandemonium of the world burst upon my unwilling ears. I staggered, as though harshly awakened from a gossamer dream. The transcendental wine removed beyond my reach.

---

[1] The Oxford English Dictionary gives, as rare, this definition of bioscope: A view of life; that which gives such a view. Master Mahasaya's choice of a word was, then, peculiarly justified.

"Little sir, I see you found the second bioscope to your liking." The saint was smiling; I started to drop in gratitude on the ground before him. "You can't do that to me now; you know God is in your temple also! I won't let Divine Mother touch my feet through your hands!"

If anyone observed the unpretentious master and myself as we walked away from the crowded pavement, the onlooker surely suspected us of intoxication. I felt that the falling shades of evening were sympathetically drunk with God. When darkness recovered from its nightly swoon, I faced the new morning bereft of my ecstatic mood. But ever enshrined in memory is the seraphic son of Divine Mother—Master Mahasaya!

Trying with poor words to do justice to his benignity, I wonder if Master Mahasaya, and others among the deep-visioned saints whose paths crossed mine, knew that years later, in a Western land, I would be writing about their lives as divine devotees. Their foreknowledge would not surprise me nor, I hope, my readers, who have come thus far with me.

•

स्वामी नित्यात्मानन्द जी

- जन्म का नाम : जगबन्धु राय।
- जन्म : गंगा दशहरा, सन् 1893 (मामा श्री भैरवराय और श्री गोबिन्दराय के घर)
- स्थान : पूर्वी बंगाल (बंगला देश) के मैमनसिंह जिले का कोठियादि नाम का कस्बा
- शिक्षा : लॉ तक। लॉ करते-करते श्री म के पास जाने लगे। श्री म कथित ठाकुर की बातें डायरी में लिखने लगे।
- दीक्षा : स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज) जी से दीक्षित।
- ऋषिकेश-वास : सन् 1938 से ऋषिकेश में वास और 'श्री म दर्शन महाग्रन्थ-माला का लेखन और प्रैस कॉपी की तैयारी।
- सन् 1958 में श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता से भेंट। शेष जीवन प्राय: उन्हीं के वास स्थान को निज आश्रम बनाए रखा। उनकी-सेवा सहायता से श्री म दर्शन का मुद्रण-प्रकाशन आरम्भ। रोहतक में सन् 1967 में श्री म ट्रस्ट की स्थापना।
- महासमाधि : 12 जुलाई, सन् 1975 को # 579/18-बी, चण्डीगढ़ में।

मास्टर महाशय के सदुपदेश

संकलन : डॉ० नौबतराम भारद्वाज

[गत वर्ष नूपुर 2019 में प्रकाशित मास्टर महाशय के सदुपदेश श्री म दर्शन भाग-1 से लिए गए थे। इस बार इन्हें श्री म दर्शन भाग-2 (संस्करण 2017) से लिया गया है।]

प्रकृति भी वे ही करते हैं और प्रकृति पर विजय भी वे ही करवाते हैं। सत्त्व, रज, तम— ये तीन गुण प्रकृति के उपादान हैं। इनका काम है जीव को संसार में बद्ध करना। उनके हाथ से मुक्तिलाभ का उपाय भी उन्होंने ही बोल दिया है। कहते हैं, 'हे जीव, मेरे शरणागत हो जाओ, वह होने पर ही केवल इस दुरतिक्रमणीय माया के हाथ से निष्कृति लाभ कर सकोगे।

तपस्या माने क्या?— प्रकृति को जीतने की चेष्टा का नाम ही तपस्या है। साधुसंग, निर्जनवास, निर्जने-गोपने रो-रो कर उनसे कहना। ये सब करते-करते उनकी कृपा होने पर प्रकृति-जय होती है। प्रकृति-जय माने ही ईश्वर-दर्शन।

—10.05.1923

जिसकी जैसी प्रकृति, वह वैसा ही कार्य करेगा। जन्म चाहे जहाँ भी क्यों न हो, ईश्वर-भक्त देव-सेवा में ही लगेगा। ईश्वर-दर्शन में कुल, शील की अपेक्षा रहती नहीं। धनी-दरिद्र भेद नहीं। राजा-प्रजा, पण्डित-मूर्ख, ब्राह्मण-चाण्डाल, भेद नहीं। ऊँच-नीच नहीं वहाँ पर।

—10.05.1923

ठाकुर कहा करते, 'जीव का मैं' जाता नहीं। ईश्वरकोटि जैसे अवतारादि, उनका 'मैं' चला जाता है। जीव का 'मैं' जब जाने वाला ही नहीं, तब रहे साला 'दास-मैं' होकर, यह बात कहते। और भी कहा : जीव है जैसे पीपल का पेड़; आज काटकर फैंको, कल ही फिर और फुनगियाँ निकल

पड़ेंगी। अवतारादि जैसे मूली का पौधा, जड़ समेत निकल आता है; 'मैं' रहता ही नहीं।

मैं मनुष्य, मैं विद्वान, बुद्धिमान, मैं अमुक् का पुत्र, अमुक् जाति— यह हुआ कच्चा मैं। मैं ईश्वर का दास, भक्त, मैं उनकी सन्तान इत्यादि भाव, किंवा मैं ही वे, यह हुआ पक्का मैं। ठाकुर कहा करते, 'भक्त का मैं', 'दास मैं' अच्छा।

—11.05.1923

भक्तगण जब बहुत नीचे डूब जाते हैं तब उनका परित्राण करने, उनका पथ सीधा करने वे आते हैं। कितना सहज कर दिया इस बार, कितना नीचे आ गए! बतलाया तो— साधुसंग, प्रार्थना, निर्जनवास, तीर्थ इत्यादि करोगे। इतनी दूर नीचे उतर गए थे, 'तीन दिन निर्जनवास कर लेने से ही हो जाएगा' कहा था। माने तीन दिन में ही एक taste (आस्वाद) पड़ जाएगा। पीछे स्वेच्छा से ही जाना चाहेगा मन। इतने उपाय बतलाए ठाकुर ने, वे भी करते कहाँ हैं लोग?

—11.05.1923

जिनके पास रुपया-पैसा नहीं, उन्हें तो हो सकता है, समय ही न हो। स्त्री, पुत्र हैं, उन्हें रोजगार करके खिलाना पड़ता है। किन्तु जिनको खाने-पहनने की चिन्ता नहीं, वे क्यों नहीं करते, बता सकते हो महाशय? वे भी कहते हैं, यह इतनी विषय-सम्पत्ति है, मैं न देखूँ तो देखे कौन? मुखर्जी को ठाकुर ने पूछा था कुछ दिन न आने पर : क्यों नहीं आए? उन्होंने उत्तर दिया, 'जी, मुझे सब कुछ देखना पड़ता है— बाड़ी-घर, विषय-सम्पत्ति।' उनका किन्तु पुत्र-कन्या कोई भी नहीं। यह कैसा काण्ड! इतना अवसर, रोटी की चिन्ता नहीं, तब भी होता नहीं!"

—11.05.1923

आन्तरिक पुकारते-पुकारते वे कर्म कम कर देते हैं। कर्म कम होते ही ईश्वर के लिए व्याकुलता आती है। व्याकुलता आते ही सब हुआ। ठाकुर बतलाते, 'जैसे अरुणोदय के परे ही सूर्योदय, वैसे ही व्याकुलता होते ही उनका दर्शन होता है।' कर्म कम होना माने भोगान्त।

—11.05.1923

बाहर से तो लगता है मानो विश्व है automatic (स्वयं परिचालित)। किन्तु सो तो नहीं। सब उनकी इच्छा से चलता है। यही समझ सकने पर ही problem (समस्या) प्राय: solved (समाधान) हो जाती है। जब जिस अवस्था में ही रहना पड़े, आनन्द में रह सकता है मनुष्य। उनके इंगित से सब चलता है— यह भूल जाना ही है सब दु:खों का कारण। वे यन्त्री, मनुष्य यन्त्र।

—11.05.1923

किन्तु उनके आने का प्रधान उद्देश्य है, भक्तों को उठाना। वे इतने ज़डित हो जाते हैं कि उन्हें आना ही पड़ता है उन्हें उठाने। सब के लिए ही उन्हें भावना, किन्तु भक्तों के लिए भावना है अधिक। कारण, भक्तों को देखकर तो लोग सीखेंगे, उन्हें पुकारेंगे। तभी तो शान्ति।

—12.05.1923

दु:ख-दु:ख कहने से दु:ख जाएगा नहीं। उनका नाम लेने से, उनकी वाणी चिन्तन करने से, उनका दर्शन होने से तब सब दु:ख दूर होते हैं। जभी तो दु:ख-कष्ट के गीत न गाकर, उनके नाम, रूप, लीला के गीत, आनन्द के गीत गाने चाहिएँ। रोग-रोग कहते रहने से रोग हटेगा नहीं। डॉक्टर की बात सुननी होगी, दवा लाकर खानी होगी, तब आरोग्य-लाभ होगा। दु:ख-कष्ट तो है भवरोग। इन्हें हटाना हो तो उनका नाम गुणगान चाहिए। सुख के गीत गाने चाहिएँ। जिस सुख के संग दु:ख जड़ित नहीं, उसी सुख के गीत दरकार— उसी सुख-शान्ति-आनन्द के गीत गाने चाहिएँ। तब भवरोग की निवृत्ति होगी, त्रिताप ज्वाला की शान्ति होगी। जभी तो ठाकुर सर्वदा आनन्द के गीत गाया करते थे।

—12.05.1923

आहार-विहार में ही सब समय चला जाए तो उनका चिन्तन होगा कब? जभी simple life (अनाडम्बर जीवन) दरकार। अध्यात्म-चिन्तन में जो भारत जगत् का मुकुटमणि है, इसके मूल में यही बात थी— plain living and high thinking (सरल जीवन, उन्नत मनन)। ऋषियों का

जीवन अति सरल था। जभी वे ईश्वर-चिन्तन में समस्त समय अतिवाहित कर सकते थे।

—12.05.1923

ठाकुर आप-ही-आप कहते रहते, लोग यह 'कत्र्ता-कत्र्ता' बोलते हैं कैसे, मैं तो देख रहा हूँ सब ही वे। किन्तु 'मैं' भी तो जाने वाला नहीं। जभी 'मैं उनका दास, यह भाव लेकर रहने को बतलाया। वे ही सब कर रहे हैं, और फिर सबको देख रहे हैं।

—13.05.1923

साधन-भजन कितना ही चाहे करो, test (परीक्षा) तो है उनके दर्शन करके उनके संग आलाप करना। जरा-सा आँख बन्द करके, ध्यान करके कहने से कि हमारा realisation (ईश्वर-दर्शन) हो गया है, मैंने सब देख लिया है, ऐसे नहीं होता। दक्षिणेश्वर में ठाकुर के पास कमरा-भरा लोग बैठे थे— विजयकृष्ण गोस्वामी भी थे। ठाकुर ने कहा, 'प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, माँ आई हैं।' यह है test (परीक्षा)— दर्शन और आलापन।

—14.05.1923

सेवा का अर्थ है— प्रत्येक के भीतर नारायण हैं, उनकी सेवा स्वयं करना— अन्य को न करने देना। उससे है अपना ही लाभ। मैं क्या अपनी सेवा करता हूँ? उत्तम भक्त देखते हैं, सर्वत्र भगवान हैं विराजमान। तभी सब जीवों का सम्मान और सेवा करते हैं। अपने भीतर ही भगवान के दर्शन करते हैं, जभी उनकी सेवा करते हैं स्वयं ही। लोगों का मन शुद्ध नहीं, तभी सब में उन्हें देख पाते नहीं। श्रीकृष्ण ने इसीलिए तो बड़े-बड़े कई चुन लिए थे— जैसे पीपल, हिमालय, चन्द्र, सूर्य, सागर। इनमें है उनका अधिक प्रकाश।

—14.05.1923

बात तो यही है, ईश्वर में मन रखकर सब कुछ करो। कुछ दिन निर्जने, गोपने साधन-भजन करके, भक्ति प्राप्त करके तब संसार में जाओ, संसार करो। इससे अनिष्ट होगा नहीं। तब संसार, संसार नहीं रहता।

ठाकुर बतलाया करते, जैसे चूना लगाने से जोंक छूट जाती है, वैसे ही भक्तिलाभ के बाद काम, क्रोध, मोह अपने आप झड़ पड़ते हैं। कठिन तो चाहे है, किन्तु अभ्यास से सहज हो जाता है। उनके पास प्रार्थना करनी चाहिए, निर्जने गोपने। और सत्संग करना चाहिए— कभी-कभी निर्जनवास। ये सकल उपाय वे बतला गए हैं।

....भूल-भ्रान्ति न रहे तो जगत् चले कैसे? सब ही यदि ब्रह्म-ज्ञान-लाभ कर डालें तो सृष्टि रहे कैसे? उनकी scheme (योजना) ही ऐसी है कि अज्ञानता रहेगी ही। उपाय है उनकी शरण। शरणागत होने पर फिर संसार में बद्ध करते नहीं, तब भूल होती नहीं।

—16.05.1923

भोगत्याग का नाम ही है संन्यास। वह घर में रहकर भी हो जाता है। है तो बहुत कठिन, किन्तु उनकी इच्छा से हो जाता है। देखता हूँ, ऐसे कोई-कोई हैं— गेरुआ चाहे न ही लिया। गेरुआ तो केवल साइन बोर्ड के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वे घर में रहकर ही भोगत्याग करके रहते हैं।

—16.05.1923

ईश्वर-दर्शन का sign (लक्षण) है— बालकवत्, उन्मादवत्, जड़वत् और पिशाचवत् हो जाता है। कर्म सब घट जाते हैं— 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि।' तब और वासना भी रहती नहीं। और संशय सब चले जाते हैं। वेद में हैं ये सब बातें— 'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया:।' (मुण्डकोपनिषद् : 2/2/8) जितेन्द्रिय हो जाता है— काम, क्रोध जय हो जाता है। शुचि-अशुचि रहती नहीं— हो सकता है शौच के लिए बैठा हुआ है, सामने एक बेर मिला, झट मुख में दे दिया और खा डाला। ठाकुर की ऐसी सारी अवस्थाएँ हुई हैं।

—18.05.1923

सब लोग, एक ईश्वर को लेकर ही नाना देशों में, नाना कालों में, नाना भावों में आनन्द मनाते हैं। इसे ही समझ लेने पर सब अपने हो जाते हैं। तब पराया कोई नहीं रहता। तभी झगड़ा भी नहीं रहता। यही बात समझाने के लिए ठाकुर आए और नाना पथों द्वारा साधन किया। सब

रास्तों द्वारा जाकर अन्त में एक ही स्थान पर पहुँचे। तभी कहा, 'जतो मत, ततो पथ; मत पथ।' (जितने मत, उतने पथ, मत पथ।)

—18.05.1923

समय निश्चित करके जप-ध्यान करने के लिए कहा करते। जिस समय जो करना निश्चय किया है उस समय वही करूँगा ही, ऐसी रोख चाहिए।

....जभी तो सन्ध्या के समय सब काज छोड़ कर उन्हें पुकारना उचित। कहा करते, ऋषियों ने कितना कष्ट करके फिर उनका दर्शन पाया। भोर वेला ही आश्रम से बाहर गम्भीर वनों में चले जाते— पीछे लोग आकर भजन में व्याघात न करें। और सन्ध्या को लौट आया करते। इतना किया करते, तभी तो दर्शन पाया करते।

—19.05.1923

मरुभूमि में जैसे ओएसिस (मरूद्यान), वैसे ही है संसार में साधुसंग। मरुभूमि में तृष्णार्त्त हो जन छटपट करता है, और सम्मुख ओएसिस देखकर उसमें जाकर आश्रय लेता है, तब प्राण बचता है। उसी प्रकार संसार की यातना से अस्थिर होकर व्यक्ति साधुसंग रूपी ओएसिस में आश्रय लेता है।

—20.05.1923

नृसिंह की रुद्र मूर्त्ति देखकर देवगण भयभीत। सबने परामर्श करके उनके अति प्रिय भक्त प्रह्लाद को सम्मुख भेज दिया। भगवान वात्सल्य से उनकी देह चाटने लगे। तब जगत् शान्त हुआ। तभी तो ठाकुर कहते, 'भक्त और भगवान एक।' ....

गुरु-कृपा बिना ये काम, क्रोधादि जय करना है असम्भव। शून्य (अन्धकार) में चलना जैसे है असम्भव, वैसा ही असम्भव। उनकी कृपा होने पर, भक्ति-लाभ होने पर, होता है। वे कहते, चूना लगाने से जैसे जोंक झड़ पड़ती है, वैसे ही भक्ति होने पर ये सब चले जाते हैं। उनके प्रेम की एक बूँद पा लेने पर कामिनी-काञ्चन तुच्छ हो जाते हैं।

—20.05.1923

साधुसंग सिवा और उपाय नहीं है। यही एक ही सब कुछ ठीक कर देता है। शास्त्र पढ़ो— उसका अर्थ ही बोध नहीं होगा, साधुसंग बिना किए। साधुसंग करने पर तपस्या करने की इच्छा होती है, तब धारणा होती है। अनेक ही शास्त्र खरीद कर अपने आप पढ़ते हैं, किन्तु उसमें धारणा नहीं होती।....

केवल पढ़ने से कुछ भी होता नहीं— साधन बिना किए। साधुसंग करने से साधन करने की इच्छा होती है, साधु को साधन करते हुए देख कर। जो धनी हैं, तथापि भक्तिमान हैं, समझना होगा पूर्वजन्म में साधन करते-करते भोग-वासना आने से योगभ्रष्ट हो गए थे। तो भी इस जीवन में बाकी भोग शेष हो जाने पर ही शान्ति प्राप्त करेंगे।

—20.05.1923

वे इच्छा कर लें तो क्या नहीं कर सकते। तथापि हैं साधन-सिद्ध, कृपा-सिद्ध, स्वप्न-सिद्ध। ऋषि-मुनि साधन-भजन करते हैं लोक-शिक्षा के लिए। एकजन को झट से हो गया, क्यों? क्योंकि उसका भाग्य सुन्दर था, तभी हो गया उनकी कृपा से। इसलिए क्या सब को ही इस भान्ति हो जाएगा? साधन करने से सबको हो सकता है। इसीलिए ऋषियों ने तपस्या की थी— उन्हें देखकर यदि कोई अल्प करे।

—21.05.1923

ठाकुर निर्जने गोपने रो-रोकर पुकारने के लिए कहा करते थे, क्यों? क्योंकि उन्होंने स्वयं यह सब किया था कि ना। और यह है सहज पथ सबसे। कहा करते, कलि में अन्नगत प्राण, तिस पर आयु कम। समय कहाँ? अन्न की व्यवस्था करने में ही सब समय कट जाता है। पुकारूँगा-पुकारूँगा करते-करते ही बस इस ओर हो जाता है। जभी तो कहा करते, 'रो-रो कर केवल कहो उन्हें।'

—22.05.1923

ऐसी अवस्था हो गई थी ठाकुर की— ईश्वर की कथा के सिवा और कुछ भी अच्छा लगता नहीं था। अन्य बात सुन भी नहीं सकते थे— सुन लेने पर ज्वाला होती। कोई अन्य बात बोलता तो हाथ जोड़कर मना कर

देते। ठीक जैसे जलविहीन मछली की अवस्था। मछली को भूमि पर रखने से क्या करती है?— छटपट करती है। जल में छोड़ दो, फिर प्राण आ जाता है। वैसी ही ठाकुर की अवस्था— प्राण जाय-जाय होता अन्य बातों से। ईश्वर की बात होती, प्राण फिर आ जाता।

—23.05.1923

ठाकुर के पास 'पेला' नहीं था। किस प्रकार भक्तों का कल्याण हो— उनका कर्मत्याग हो और उन्हें (ईश्वर को) पुकारने के लिए अवसर हो, यही चिन्तन सदा किया करते थे। रुपए-पैसे का नाम तक भी लेते थे नहीं। खाली किस प्रकार उन्हें चैतन्य हो, यही चेष्टा रहती। वे ऐसे थे कि देखने से ही चैतन्य हो जाता। ....

आहा, उनकी बातें क्या कहें— कैसी-कैसी अवस्थाएँ होती थीं! सर्वदा समाधिस्थ— नाना प्रकार की समाधियाँ, जैसे समाधियों की demonstration (प्रदर्शनी)। चक्षु स्थिर— पलकशून्य, मुखमण्डल ज्योतिर्मय। मन किसी (भाव) राज्य में विचरण कर रहा है। चक्षु कभी निमीलित, कभी अर्धनिमीलित, कभी खुले हुए— नाना अवस्थाएँ।

—23.05.1923

भक्तों के लिए ठाकुर की कैसी भावना (चिन्ता)! भक्त लोग सेवा नहीं जानते, इससे अपराध होता है, इसीलिए माँ के निकट plead (प्रार्थना) करते हैं, 'माँ, उनका दोष क्या? इतने समस्त काज में वे आ सकते नहीं ना।' माँ पीछे रोष न करें, तभी कहा करते ऐसी बातें।

—23.05.1923

कभी-कभी कहा करते, जल्दी-जल्दी कर-करा के खत्म करो। कब बस हो जाए, निश्चय नहीं। और कहा करते, कुछ थोड़ा-सा दूर निर्जने चले जाना चाहिए बीच-बीच में। लोग हिलना चाहते ही नहीं। पहले पचास होते ही काशी चले जाया करते थे। अब वैसा कहीं दिखाई नहीं देता। कितना क्रन्दन; जाने से चलेगा कैसे यह सब? क्यों? पहले लोग किस प्रकार किया करते थे? यही भावना करके करना चाहिए— आज मैं मर जाऊँ, चलेगा कैसे उनका? क्या सारा जीवन परिश्रम करना होगा संसार के

लिए? जल्दी-जल्दी बन्दोबस्त करके निकल पडऩा और बैठे-बैठे उनका नाम करना।

—23.05.1923

कर्मत्याग हो जाने पर ही समाधि। समाधि में क्या होता है, कौन जाने? जिसको हुई है केवल वह ही समझ सकता है— मुख से बोला नहीं जाता। अवतारादियों की होती है यह अवस्था। दूर से तो 'हो-हो' शब्द सुना जाता है, किन्तु हाट में घुसने पर तब पता लगता है कहाँ क्या है। कौन-सी है आलू की दुकान, कौन-सी परवल की। हम हैं fortunate, (सौभाग्यवान)। जिसकी सर्वदा समाधि होती थी, ऐसे एकजन के संग में रहे हैं। जभी उनकी कृपा से कुछ-कुछ समझ में आ रहा है। ये सब कहने की बातें नहीं हैं— हृदय के अन्तर में अनुभव होता है। ठाकुर कृपा करके अपने स्पर्श द्वारा अथवा इच्छामात्र से ही यह अवस्था कर दे सकते थे। अपने भक्तों को उन्होंने यह अवस्था लाभ करवा दी थी।

—23.05.1923

मनुष्य इतना दुर्बल होता हुआ भी इसी मन, बुद्धि द्वारा उन्हें प्राप्त कर सकता है। इसी पंक के भीतर से ही पद्मफूल फूटता है। मोड़ फिरा देना। जो मन-बुद्धि बद्ध करती है, वह ही फिर मुक्त करने का प्रयोग जान लेती है। जो विष प्राण लेता है, वही अमृत हो जाता है। प्रयोग जानना चाहिए। भगवान स्वयं आते हैं मनुष्य होकर यह सिखाने। ठाकुर यही अभी तो आए। उन्होंने सब से सीधा पथ दिखा दिया है। चलते रहो— शीघ्र काज होगा। कहा था, वह सब तुम लोगों को नहीं करना पड़ेगा, खाली निर्जने-गोपने रो-रोकर बोलो, 'दर्शन दो पिता। और फिर अन्तरंगों से कहा, 'तुम्हें तो और कुछ करना नहीं होगा— मेरा ध्यान कर लेने से ही होगा।' कुछ तो करना चाहिए। कुछ करने पर ही उनकी कृपा होती है। तब सब समझ में आ जाता है।

—24.05.1923

आन्तरिक होने पर वे सब ठीक कर देते हैं। मनुष्य की बुद्धि में जो insuperable difficulty (दुर्लंघ्य विपद्) लगती है, उनकी इच्छा होने से

वह भी दूर हो जाती है। अभावहीन, अचिन्तनीय, स्वप्न के अगोचर होने वाले व्यापार भी सब सरल हो जाते हैं। उनकी कृपा से पथ परिष्कृत हो जाता है। जभी आन्तरिक होना चाहिए।....

भगवान के दर्शन हो जाने पर, तब जगत् 'भूल' हो जाता है। अन्य कुछ भी मन में नहीं ठहरता। ठाकुर के यहाँ नाना प्रकार के संकल्प करके अनेक लोग जाया करते। कोई जप करेगा या ध्यान करेगा अथवा स्तव पाठ करेगा। ओ माँ, ज्यों ही उनके सामने पहुँचते, त्यों ही सब 'भूल' हो जाता। दर्शन ऐसी चीज! यहाँ आकर सब चुप। भगवान को पाने पर फिर सब विषयों से मन उठ जाता है। जैसे मधुमक्खी जब फूल पर बैठती है, तब अन्य ओर लक्ष्य नहीं रहता, मधुपान में मस्त। तब सब चुप।

—25.05.1923

जिस दिन तक दर्शन नहीं होता, उस दिन तक चेष्टा करनी चाहिए। चेष्टा के लिए संन्यास लेना, मठ में जाना, साधु होना। चेष्टा करते-करते आन्तरिक होता है। संन्यास-आश्रम और ब्रह्मचर्य-आश्रम इन स्थानों से गन्तव्य-स्थल पर पहुँचना सहज होता है। गन्तव्य-स्थल हैं भगवान।....

ईश्वर-दर्शन होने पर कैसा होता है, जानते हो? जैसे पाँच वर्ष का बालक, किसी भी गुण के वश नहीं। जैसे crystal (स्वच्छ स्फटिक) जवा कुसुम के सामने धरो, लाल दिखाई देगा, कोयले के सामने धरो, काला दिखाई देगा। त्रिगुणातीत। जभी ठाकुर को देखा करता, कोई नाम पूछता तो कहा करते, 'कोई कहता है भट्चाज्, कोई परमहंस।' किसी भी गुण के भीतर नहीं।

—25.05.1923

सब ही वे करवाते हैं— यह जान लेने पर ही निश्चिन्ति। बड़ा कठिन; जानने नहीं देते। कहाँ से अहंकार आ पड़ता है!

—26.05.1923

किन्तु अब बड़ी सुविधा। अवतार आए हैं। जभी तो खेतों में भी एक बाँस जल है। जितना चाहो, लेते जाओ। 'धर्म की लूट' है। उसकी चेष्टा

ही करते हैं कहाँ लोग? (दीवार पर ठाकुर की छवि पर दृष्टि डाल कर) ऐसा आदर्श सामने है। लोग चाहते ही कहाँ हैं? अवसर ही नहीं होता।....

जिस विद्या से ईश्वर को जाना जाता है वही विद्या और सब अविद्या। वेद-शास्त्र, साइन्स को इतना जानने से क्या होगा? जिससे ईश्वर-लाभ होता है, वही विद्या। जो यह जानता है, उसकी education (शिक्षा) ही है education (शिक्षा)। उसे छोड़ और सब अर्थकरी विद्या। इससे क्या होता है— नाम, यश, रुपया-पैसा, ये ही प्राप्त होते हैं, भोग बढ़ाती है केवल। जभी ठाकुर कहा करते, 'कोरे पण्डित खूब ऊँचे उड़ते हैं, किन्तु दृष्टि मरघट पर ही।'

—26.05.1923

एकजन भक्त ने ठाकुर से पूछा, बाल-बच्चों के लिए परिश्रम कितने दिन करना होगा? ठाकुर ने उत्तर दिया, जब तक लायक न हो जाएँ, अर्थात् करके खा सकें; इसके पीछे जो हो करें। पशु-पक्षियों को देखा है, जितने दिन छोटे रहते हैं, माँ खिलाती है। बड़े होने पर स्तन पीने जाएँ किंवा माँ के मुख-में-मुख दें तो हटा देती है। अर्थात् अब बड़े हो गए हो, चुग कर खाना सीख गए हो, अपने लिए आप करो, खाओ। पशु-पक्षी बड़े होने पर बच्चों को खाने को देते नहीं। किन्तु मनुष्य में यह नहीं।....

अर्थ-वृद्धि की चेष्टा करना उचित है कि नहीं, पूछने पर ठाकुर ने कहा, हाँ, 'जदि विद्यार संसार-जन्य होय।' (हाँ, यदि विद्या के संसार के लिए हो।) विद्या के संसार-जन्य माने, यदि भगवान-लाभ उद्देश्य हो। यदि उसके द्वारा देवसेवा, साधु-भक्त सेवा, दरिद्रनारायण सेवा हो, केवल मात्र आत्मीय परिजनों की सेवा-जन्य नहीं; मकान-कोठी, गाड़ी-घोड़ा जन्य नहीं; कोरमा, पुलाव खाने के लिए नहीं। बलराम बाबू वही किया करते। वे कहा करते, क्यों मैं इनके लिए इतना खर्च करने जाऊँ? देवता, साधु और दरिद्र की सेवा अधिक किया करते। इसी कारण आत्मीय जन अनेक ही असन्तुष्ट थे।

—26.05.1923

समझौता करने से चलता नहीं।

—26.05.1923

कथा में है, वंश में एकजन साधु हो तो चौदह पीढियों का उद्धार हो जाता है। माने आत्मीय लोग सर्वदा उसकी ही चिन्ता करते हैं कि ना! उसके साथ ही अनिच्छा से ईश्वर-चिन्तन होता जाता है। कारण, भक्त-भगवान अभेद। ठाकुर ने कहा था, मिश्री की रोटी जिस प्रकार भी खाओ, मीठी लगेगी।

—27.05.1923

भारतवर्ष में जन्म होना ही है भाग्य की बात। इस पर यहाँ है फिर special opportunity (विशेष सुयोग)। ठाकुर आए हैं, भगवान अवतार होकर आए हैं। अब बड़ा chance (सुयोग) है।....

साधना दरकार। वे कर्त्ता, मैं अकर्त्ता, यह समझने के लिए ही साधना। साधना माने निज को पहचानने की चेष्टा। निर्जन में बैठकर विचार करना— मैं क्या हूँ, किस उद्देश्य से मेरा जन्म हुआ, क्यों मृत्यु होती है? यह जगत् क्या है? किसने किया? दु:ख-कष्ट क्यों? दु:ख के हाथ से परित्राण का उपाय क्या? चिर सुख, चिर शान्तिलाभ क्या सम्भव?— निर्जन में बैठ कर यह सब चिन्तन करना। इस प्रकार चिन्तन करने से अन्त में देखा जाता है, ईश्वर ही जीव, जगत्, चतुर्विंशति तत्त्व, सब होकर रह रहे हैं। वे अन्तर में रहते हैं और फिर चलाते भी हैं। तब उनके शरणागत होकर प्रार्थना करने से वे कर्त्तागिरी कम कर देते हैं। कर्त्तागिरी के कम होते ही शान्ति, आनन्द।

—27.05.1923

अखण्ड सच्चिदानन्द जो वाक्य मन के अतीत, वे रूप धारण करके भक्तों के संग बातें करते हैं। निराकार साकार हो जाते हैं। कमरा-भरे लोगों के सामने ठाकुर के संग ईश्वर बातें किया करते। एक दिन नहीं, सर्वदा। ईश्वर एक रूप में अवतार हुए, अन्य रूप में बातें किया करते। दो न हों तो लीला नहीं होती, जभी। वे न बुझाएँ तो यह तत्त्व है दुर्बोध्य।

निराकार, साकार, अन्तर्यामी, चतुर्विंशति तत्त्व, अवतार— उसी एक के ही हैं भिन्न-भिन्न रूप।

—28.05.1923

आत्मीय जनों का एक अधिकार होता है, अन्न-वस्त्र का। मोटा भात, मोटे कपड़े का प्रबन्ध हो जाए तो बस। यह provision (व्यवस्था) करनी चाहिए, जब तक निजी देह-बुद्धि रहती है। जब तक अपनी क्षुधा, तृष्णा का बोध है, लज्जा बोध है, नाबालिग पुत्र और अविवाहिता कन्या— इनकी व्यवस्था करनी चाहिए। पिता-माता रहें तो उनकी सेवा जब तक जीवित रहें तब तक करनी चाहिए। लड़के-बच्चे के दाल-भात की व्यवस्था होते ही निकल पडऩा निर्जने। बीच-बीच में सम्वाद लेना। provision (प्रबन्ध) कर रखना दाल-भात, मोटे वस्त्र का— विलासिता के लिए नहीं, नाना भान्ति के अन्न, व्यंजनों के लिए नहीं, गाड़ी-भर कपड़ों के लिए नहीं। ठाकुर इसी प्रकार करने को कहा करते। और बाकी रुपये के द्वारा देव-सेवा, साधु-सेवा, दरिद्रनारायण सेवा करो। इससे आत्मा का कल्याण होगा— मुक्ति होगी।

—28.05.1923

देखिए ना, हम क्या लिए हुए रह रहे हैं? जिससे पशुजीवन बढ़े, उसकी ही चेष्टा सर्वदा करते हैं। आहार, विश्राम, सन्तानोत्पादन, मृत्यु— यही तो हो गया है जीवन। ईश्वर के लिए क्या करते हैं हम? निज भी यही कर रहे हैं, परिजनों को भी यही सिखा रहे हैं। लड़के-लड़कियों को ब्याह दो— संसार-वृद्धि हो, यही काज। किन्तु वेद कहता है, 'न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि:। (केनोपनिषद् 2:5)— इस शरीर में भगवान को जान न पाने से ही है महाविनाश। उसका मैंने क्या किया? जभी तो ठाकुर बीच-बीच में निर्जन में चले जाने के लिए बोलते। जिससे ये सब बातें निर्जन में स्मरण आ जाएँ— जीवन का उद्देश्य क्या है? और मैं क्या कर रहा हूँ? परिवार के लोग यदि पशु जीवन-यापन कर रहे हैं, तब तो उन्हें छोडऩा खूब आसान है। भक्त हों तो फिर छोडऩे में कष्ट हो सकता है। भक्त को तो छोड़ा भी नहीं जाता ना!

—28.05.1923

मूल बात है, उनके शरणागत होना; और उसके लिए जो कह गए हैं, उसकी चेष्टा करना। बाकी काज उनका। वे तो सब के लिए भावना करते हैं— योगी, योगी-भोगी, और भोगी। सकल भार उनके ऊपर। किन्तु यदि तुम जीवन में शान्ति चाहो, सुख चाहो, उनके (ईश्वर के) लिए चिन्तन करने की चेष्टा करो। उनकी शरण लो।

—28.05.1923

समाधि तो आदमी की normal state (सहज अवस्था) है। किन्तु अब abnormal (असाधारण) हो गई है। क्यों? भोग-वासना से। भोगवासना के जाने से ही समाधि। पंचायती दुर्गा-पूजा में सुन्दर दिखाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता ध्यानमूर्त्ति में बैठे हुए हैं। इसका अर्थ है, जीव की normal state (सहज अवस्था) है समाधि। संसार में पड़कर वह abnormal (असाधारण) हो गई है। जैसे कोई सोया हुआ था अर्थात् समाधि में था। तब नाक के पास किसी ने नसवार लाकर रख दी। अब छींकते-छींकते प्राण जा रहा है। निद्रा भंग हो गई। जीव का भी ठीक वैसा ही हाल हुआ है। समाधि अर्थात् भगवान को भूल कर विषय में मस्त हुआ पड़ा है।

—29.05.1923

ये समस्त अद्‌भुत काण्ड देख कर ठाकुर मुस्कराया करते। कहीं कुछ भी नहीं। अकेले बैठे-बैठे हँस रहे हैं। Individual case (व्यक्तिगत भाव में) जब देखते, तब हँसा करते। और फिर जगत् का व्यापार, जब collective way (समष्टिगत भाव) में देखते, तब ताली बजा-बजा कर नाचते महामाया का नाच देख-देख कर। इतना सब करने पर, इतनी बातें बोलने पर भी लोगों को कहाँ चैतन्य होता है? 'तीन दिन करने से ही हो जाता है', कहा था। करेगा कैसे? संस्कार हों, तभी तो होता है।

—29.05.1923

उनके पास प्रार्थना करने से सब हो सकता है। उनकी बात पर विश्वास करके अल्प चेष्टा करना उचित। क्या आदर्श! कितनी ही बार कहा, 'आमाके चिन्ता करलेइ हबे।' (मेरा चिन्तन करने से ही होगा)। और

कुछ भी दरकार नहीं। निर्जन में बैठ कर कुछेक दिन इसी बात की भावना करने की चेष्टा करना।

कितना सीधा पथ! नाना प्रकार की बातें ही नहीं। दो रोटी की व्यवस्था करके उनका चिन्तन करो।

—29.05.1923

ठाकुर ने जो कहा, वही हमारे लिए करना उचित है। कहा, 'आमाके चिन्ता करो।' (मेरा चिन्तन करो।) उसकी ही चेष्टा करो। अन्य बातों में मन क्यों देना? उनका चिन्तन कर लेने पर जैसे ज़मीन का जल सूख जाता है, वैसे ही काम-वाम सूख जाएगा। मन जब तक है, तब तक एक-न-एक चिन्ता रहेगी ही। लोग कहते हैं, चिन्ता मत करो। वह क्या होता है? मन के रहते चिन्ता रहेगी ही। जभी उनका चिन्तन करना, अन्य चिन्ता न करके।

—29.05.1923

परमहंस देव कहा करते : ईश्वर का नाम-श्रवण व मनन करने से यदि किसी को रोमाञ्च हो जाता है और प्रेमाश्रु-वर्षण होता है तो समझना होगा, उसका कर्मत्याग होने वाला है। माने— ईश्वर के खूब निकट चला गया है। जैसे अरुणोदय हो जाने पर सूर्योदय में और अधिक देरी नहीं होती, वैसे ही ईश्वर के नाम से देह में ये सब सात्त्विक लक्षण दिखाई देने पर समझना होगा, शीघ्र ही वे दर्शन देंगे।

—30.05.1923

भक्त-घर में नित्य ईश्वरीय कथा होती है। कर्त्ता अपने आप न कर सके तो पण्डित रख कर करवाता है— रामायण, महाभारत, भागवत, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण— ये सब। सर्वदा ही उनका नाम होता है। उत्सवादि— जैसे दुर्गा-पूजा— पैसा हो तो करना उचित। साधु, भक्त और दरिद्र-सेवा। स्वामियों को इन सब के लिए चेष्टा करना उचित।

—30.05.1923

यह तपस्या क्यों?— उनके दर्शन के लिए ही है यह आयोजन! इतना कष्ट करके यह मानव-जन्म मिला है। कब यह देह शेष हो जाएगी, इसका तो निश्चय नहीं। आज है, कल नहीं। जभी झटपट काज करके उनको जितना भी पुकारा जाए, उतना ही अच्छा है। अधरसेन को कही थी यह बात। इसलिए देखा जाता है कि एक-आध जन ही व्याकुल होकर उनको पुकारता है— देह जाती है तो जाए, ग्राह्य नहीं।

—31.05.1923

ठाकुर थे जैसे माँ के अंक में शिशु। खाली माँ को ही जानते हैं। अन्य कुछ नहीं। नवगोपाल बाबू ने आशीर्वाद करने के लिए कहा तो ठाकुर बोले, ' मुझे यह नहीं करना। माँ जानती हैं सब।' केशवबाबू की माँ को भी यही बात कही थी, बड़े बेटे को आशीर्वाद करने के लिए कहने पर। लड़के के शरीर पर हाथ फेरते हुए कहने लगे, 'आशीर्वाद तो मैं दे ही नहीं सकता। माँ के सामने क्या लड़का आशीर्वाद दे सकता है? माँ जानती हैं सब।'

—06.06.1923

प्रत्येक के भीतर ही एक craving (तृष्णा) होती है भगवान के लिए। यह ठीक-ठीक आने पर ही अपने आप ही सब आता है, देह-मन-रक्षा के लिए जो-जो दरकार— जैसे प्रकाश देखकर बरसाती कीड़े आ जाते हैं। आन्तरिक उनको पुकारता हुआ देखकर कितने ही लोग उसके पास आ जाते हैं सेवा करने। वे सब भेज देते हैं। देह के लिए, पेट के लिए, जो disturbance (विघ्न) होता है, वह वे स्वयं ही दूर कर देते हैं। भक्तगण ऐसे व्यक्ति की सेवा करते हैं। मिलता ही कहाँ है सच्चा व्यक्ति जो अनन्य मन से उन्हें पुकारता है? जैसे एक जन बहुत कष्ट से काठ इकट्ठा करके आग जला लेता है, तब अनेक ही आते हैं, आग सेकते हैं। उनको कितनी सुविधा— तैयार आग मिल जाती है। सच्चा होने पर वे भक्तों को भेज देते हैं और देह-धारण की सब व्यवस्था कर देते हैं। तब सर्वदा ही योग में रहा जा सकता है। पर सच्चा होना चाहिए।

—08.06.1923

Want (अभाव) कम न किया जाए तो simple life (सरल जीवन) नहीं होता। और simple life (सरल जीवन) न हो तो धर्म जीवन नहीं होता।"

—06.06.1923

मनुष्य की problem (समस्या) तो यही है, जैसे-तैसे इस जगत्-कारण को जानना। गुरु-वाक्य में विश्वास करके लग पडऩा चाहिए। निज की बुद्धि से यह सब निर्णय होता नहीं। वह शक्ति कहाँ है? देवताओं ने कितना किया, तब ही जान पाए। कलि में जीव का अन्नगत प्राण, आयु कम। नाना तरह से चलता नहीं। निर्जने, गोपने रो-रो कर उनको कहना। उनका दर्शन होने पर, वे सब जनवा देते हैं जो-जो दरकार है। हमारे लिए इतना-सा जान लेना यथेष्ट है— ईश्वर हैं, वे सब कर रहे हैं और सब होकर रह रहे हैं।

—09.06.1923

जो रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श व्यक्ति को बद्ध करते हैं, वे ही फिर मुक्त भी करते हैं। मोड़ फिरा देने से ही हुआ। जिस रूप से मनुष्य मुग्ध हो जाता है, उसके स्थान पर ईश्वर की साकार उपासना करना। रस— चरणामृत आदि ग्रहण करना। गन्ध— जैसे पूजा का पुष्प या गन्धद्रव्य किंवा प्रसाद की गन्ध ग्रहण, शब्द— उनका नाम गुणगान करना अथवा सुनना। स्पर्श— मूर्त्ति का चरणस्पर्श, गुरु को प्रणाम, सिर पर गुरु के हाथ द्वारा स्पर्श। विषय-भोग में मन न देकर, भगवान को मध्यस्थ रखकर करना।

—16.06.1923

(फर्श पर आघात करके) यह हुआ आहत शब्द। अनाहत यूँ ही होता है। योगी जन सुन पाते हैं। जब भोग सारा त्याग हो जाता है, इधर के सब ओर से जब मन उठ जाता है, तब वही शब्द सुना जाता है।

योगी कौन? जिसका भोग त्याग हो गया है। (सहास्य) आप कोई सुनना चाहते हैं वही शब्द, वही अनाहत संगीत? यदि सुनना चाहते हैं तो फिर उस ओर (भोग में) फिर जा सकोगे नहीं।

—16.06.1923

ईश्वर बातें करते हैं। सर्वदेशों में, सर्वकालों में ही बातें की हैं। किसी ने संकलन करके रख ली हैं वे सब, किसी ने रखी नहीं। इस देश में वेदव्यास ने यह सब कथा रखी थी। परे भी कितनी हो रही हैं। अवतार के मुख द्वारा जो बाहर होता है, सब ही है revelation (वेदवाणी)।

—12.07.1923

अवतार आए हैं। बड़ा chance (सुयोग) है। पथ खूब सीधा हो गया है। वे जो कह गए हैं, केवल वही कर लेने पर हो जाता है। अमुक शास्त्र पढ़ना, अमुक यज्ञ करना— यह सब दरकार नहीं। रो-रो कर, व्याकुल होकर उनको डाकना (पुकारना)। आन्तरिक होने पर वे सब सुनते हैं। बालक रोता है, घण्टा भर माँ द्वार बन्द करके भीतर काम करती रहती है। ज्यों ही देखा, अछाड़-पछाड़ खा रहा है, त्यों ही काज फेंककर आकर बालक को गोद में उठा लिया। ईश्वर भी ठीक ऐसा ही करते हैं। वे चाहते हैं, मेरे लिए लोग क्रन्दन करें।

—14.07.1923

साधुसंग दरकार। मन स्थिर होता नहीं। वह (साधुसंग) हो जाए, फिर वैसा होगा नहीं। नित्य करना उचित, वह बिलकुल ही न हो सके तो रोज अवसर निकाल कर उनके पादपद्म-चिन्तन करना उचित। रूप, महावाक्य, जीवन-चरित— सब ही उनके ध्यान के विषय। बात तो यही है— निरवच्छिन्न तैलधारावत् योग में रहना। योगी माने जिसने मन को वशीभूत किया है। मन जिसका है वश में, मन के वश में नहीं जो।

—14.07.1923

केवल विद्या या बुद्धि का विषय नहीं वे। तब तो पण्डितों को— बी०ए०, एम०ए०, को झट आ जाता ईश्वर-तत्त्व। किन्तु ऐसा तो नहीं है। केवल पाण्डित्य से उनका लाभ होता नहीं। विवेक, वैराग्य चाहिए। यह हो तो तपस्या करने की इच्छा होती है। तपस्या द्वारा भोगान्त होने पर तब उनकी ओर पूरा मन जाता है। सूई के भीतर सूत जा रहा है। ज्यों ही एक रेशा आ गया, फिर जाता नहीं। वैसे ही है ईश्वर-दर्शन। एक बिन्दु भी भोग-वासना रहने पर फिर होता नहीं।

—15.07.1923

अवतार को कोई पहचान नहीं सकता, यदि वे ही न पहचनवावें। वे युग-युग में आते हैं। जब केवल भाव-हीन यागयज्ञ होने लगे थे, तब श्रीकृष्ण आए। आकर वेद का प्रकृत अर्थ गीता के मुख से interpret (व्याख्यायित) किया। निष्काम कर्मयोग, भक्तियोग, कितने ही तो कैसे-कैसे उपदेश दिए। और फिर साधुओं का उद्धार किया। यह ही था उनका प्रधान काज। यही जो ठाकुर आए हैं, ये भी साधुओं का ही उद्धार करने आए हैं। साधु जब विपथ पर चलने लगते हैं, तब वे निज आते हैं उन्हें उठाने।

—15.07.1923

पूर्ण ज्ञान की अवस्था में मरना और मारना एक-सा ही लगता है। पूर्ण ज्ञानी के लिए मरने पर भी कोई नहीं मरता, और वह मारे भी तो किसी को नहीं मारता। स्वतन्त्र अभिमान नहीं। जगत् की आत्मा के संग में एक ज्ञान हो गया। तभी गीता में है— न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

—16.07.1923

तपस्या माने गुरुमुख से, शास्त्रमुख से जो कुछ सुना गया है, उसका मनन करना। तब फिर एकान्त में बैठकर उसका निदिध्यासन। जभी तो भाव परिपक्व होगा। मन को दस इन्द्रियाँ विषयों में दसों ओर खींचती हैं। उनको ईश्वरमुखी करना होगा— उल्टे पथ पर ले चलना होगा। इतने सांसारिक झंझटों के मध्य रहने से यह हो नहीं सकता। इसलिए एकान्त में बैठ कर इसका ही चिन्तन करना। मनन जब पक्का हो जाता है, तब ज्ञान-भक्ति लाभ होता है। तब आकर संसार में रहना। यह हो जाने पर फिर और अनिष्ट नहीं होता। नन्हें पौधे को बड़ा करो, तना मोटा करो। तब हाथी बाँध देने पर भी क्षति होती नहीं। इसका ही नाम है तपस्या— तना मोटा करना।

—16.07.1923

स्नेह काटने का नाम ही है संसार-त्याग। संसार का एक नाम है स्नेह। ईशु ने एकजन को कहा था, 'come and follow me' घर-बार छोड़ कर मेरे संग चले आओ। स्नेह-बन्धन छोड़ कर चले आना, इसका ही नाम

संन्यास— सर्वस्व त्याग। जिसने यह आस्वाद एक बार पा लिया, वह क्या और घर में रह सकता है, या कुछ और कर ही सकता है?

—20.07.1923

'देह बेचे भवेर हाटे दुर्गा नाम किने एनेछि'— सब छोड़ कर ईश्वर को सार कर लिया है। दोनों तरफ रखी जाती नहीं। ईश्वर को चाहने पर संसार छोडऩा होता है। देह-धारण करने का नाम ही है संसार। जभी 'देह बेचे' अर्थात् संसार त्याग करके, भोग छोड़ कर— 'दुर्गा नाम खरीद लिया है'— 'bought one pearl of great price', अर्थात् श्री भगवान के शरणापन्न हुआ हूँ। प्रथम दोनों दिशाएँ रखकर चलता है, अन्त में और फिर कर सकता नहीं। मद अधिक पी लेने पर फिर होश रहता नहीं। 'देहेर मध्ये सुजन जे जन ताँर घरेते घर करेछि', (इस देह में जो 'सुजन' है, उसी ने घर में अपना घर कर लिया है।) माने ईश्वर के दर्शन किए हैं। ईश्वर-दर्शन हो जाने पर फिर जन्म-मृत्यु के अधीन होना पड़ता नहीं। तभी 'दुर्गा' बोल कर यात्रा के लिए तैयार बैठा हुआ हूँ। शरीर चले जाने पर एकदम निर्वाण, मुक्ति।

—20.07.1923

अवतार के आने से व्याकुलता बढ़ जाती है लोगों की। व्याकुलता बढ़ाने के लिए आते हैं वे। आकर कहते हैं, 'निर्जने-गोपने व्याकुल होकर रो-रो कर पुकारो, वे दिखाई देंगे।' अवतार के आने से पहले लोग गङ्गा-स्नान, जप, पुरश्चरण विधिवत् सब करते रहते हैं। वे आकर कहते हैं, 'इससे होगा नहीं। आगे बढ़ो, व्याकुल होकर काँदो (रोओ)।'

—25.07.1923

संन्यास लेकर बारह वर्ष अज्ञात रहना चाहिए। तब फिर भगवान में भक्ति होने पर, उनका दर्शन हो जाए तब आकर मिला जाए उन लोगों के संग। नज़दीक रहने से गिरने का भय रहता है।

—28.07.1923

निर्जन में जाकर मन का प्रसार होता है। यहाँ लगातार रहने से मन लिमिटिड (सीमाबद्ध) हो जाता है। जैसे चीनियों के पाँव। बचपन से ही जूता पहना देते हैं, और बड़े हो पाते नहीं, जितने थे उतने ही रहते हैं। यहाँ मन की भी वही अवस्था है। यहाँ रहना जैसे हाण्डी की मछली और निर्जन में जाना जैसे सरोवर की मछली— स्वाधीन, मुक्त। संसार तो घेरा है, बड़ा होने देता नहीं मन को। जभी तो योगी निर्जन में चले जाते हैं। वहाँ उनके संग एक हो जाते हैं।

योगी अनाहत शब्द सुन पाते हैं निर्जन में। इन कानों से नहीं, नूतन कान हो जाते हैं। सर्वदा प्रणवध्वनि हो रही है— 'मैं हूँ, मैं हूँ।' लोकालय में सुना नहीं जाता— निर्जने। निर्जन में रहने से उपाधि-लोप हो जाता है। मैं अमुक का लड़का, अमुक का पिता, अमुक का अमुक— ये सब हैं उपाधियाँ। तब स्वस्वरूप को पहचान पाता है। स्वस्वरूप को जान लेने पर उनके संग एक हो जाता है। नहर भी नदी हो जाती है, यहाँ भी ज्वार, वहाँ भी ज्वार। एक ही जल।

—29-30.07.1923

इस संसार की ओर आँख उठाकर देखने पर दीख पड़ता है; सब ही पुरुष-प्रकृति, शिव-शक्ति का मिलन। वृक्ष-लता, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु सब में ही वे। शिवलिंग को ही देखिए। ब्रह्मयोनि के ऊपर रहता है। वहाँ भी शिव-शक्ति का मिलन। दिन-रात इसी का ध्यान करने से भी हो जाता है, 'पुरुष-प्रकृति', 'पुरुष-प्रकृति', 'शिव-शक्ति', 'शिव-शक्ति'। बैठे-बैठे यही चिन्तन कर लेने पर ईश्वर-दर्शन होगा। और कुछ दरकार होगा नहीं। इस 'पुरुष' और 'प्रकृति' की उन्होंने ही सृष्टि की है; उनके organisation (जगत्) रक्षाजन्य।....

जभी हठ करके कुछ भी करते नहीं। कच्ची अवस्था में आम का छिलका उतार कर फेंक दो, तब आम होगा नहीं। गूदा होगा, गुठली होगी, पकेगा, तब फैंको कोई क्षति होगी नहीं। Unprepared (अपक्व) अवस्था में कुछ करते नहीं। Natural way (स्वाभाविक भाव) से चलना ही अच्छा है। त्याग-श्याग समय होने पर वे स्वयं करवा लेते हैं। भीतर पक जाए, तब छोड़ो, दोष नहीं। असमय में जोर करके करने से ही विपद्।

किन्तु चेष्टा करते रहना, और प्रार्थना और सत्संग।

—31.07.1923

संसारी जीव क्या लेकर पड़े हैं? Environments (परिवेश) अन्य रकम का है। उससे ही adaptation (आदत) हो गई है। जभी कहता है, 'बड़ा अच्छा हूँ।' अवतार आते हैं इसी जड़ता को तोडऩे। वे आकर शक्ति देते हैं, तभी यह जड़ता टूटती है। Source of strength (शक्ति केन्द्र) हैं अवतार। तब भी क्या चैतन्य होता है लोगों को? वे अभी-अभी तो आए हैं। कितने जनों को चैतन्य हुआ है! ....

मठ के साधु क्या केवल विद्या के जोर से ही हैं? अटूट ब्रह्मचर्य भी है साथ इनके। तभी उनका knowledge (ज्ञान) इतना अधिक है, जो कुछ पढ़ेंगे, जो कुछ सुनेंगे, वही मन में रहेगा— ब्रह्मचर्य जो है। उनका एन्साइक्लोपीडिक नॉलेज, बहुमुखी ज्ञान। ठाकुर कहा करते, 'छिद्र वाली कलसी में हजार जल डालो, ठहरेगा नहीं।' वैसे ही ब्रह्मचर्य न हो तो कुछ भी याद रहता नहीं। दो पन्ने पढ़ कर परीक्षा पास कर ली, फिर सब भूल गया— कारण, ब्रह्मचर्य जो नहीं है।

—02.08.1923

ठाकुर कहा करते, तपस्या चाहिए। हजार पोथी ही पढ़ो और जो भी करो, निर्जने तपस्या न करने से कुछ भी समझ में नहीं आता।....

शास्त्रादि पढऩा, उसमें भी विपद् है। ठाकुर कहा करते, शास्त्र में चीनी और बालू मिला रहता है। केवल चीनी चुन कर कौन देगा तुम्हें? सारा खाओ तो असुख करेगा। शास्त्र interpret (व्याख्या) करने आते हैं अवतार। उनकी बातों के साथ मिला कर पढऩा। जो मिलेगा वह लेना, जो नहीं मिलेगा, उसका त्याग करना। जो लोक-शिक्षा देंगे उन्हें थोड़ा-थोड़ा जानना अच्छा है। ये हैं सब ढाल-तलवार, अन्य को मारने के काम में आते हैं। अपने लिए तो ठाकुर का एक ही महावाक्य यथेष्ट है।

—05.08.1923

निर्जन में जाओ तभी धात ठीक रहती है, ठाकुर कहा करते। और कहा करते, 'उनकी कृपा हो जाए तो वेद-वेदान्त अपने-आप समझ में आ

जाते हैं। माँ ने मुझे सब दिखा दिए हैं।' बिलकुल भी सुविधा न हो तो जिस अवस्था में ही रहा जाए, उसी अवस्था में रहते हुए ही उनको पुकारना चाहिए। ऑफिस में कार्य करता है एक व्यक्ति, वह यदि भावना करे कि परिजनों को शान्त करने के लिए ही मेरा यह काम है। इनके शान्त हो जाने पर सम्पूर्ण मन से उनको पुकारने का अवसर होगा— इस भाव से करने से भी कर्मयोग हो जाता है।

—05.08.1923

संसार में adaptation (जड़ित) होने से सब भूल जाता है। एक शराबी गढ़े में पड़ा है। चौकीदार पुकार कर कहता है, 'उठो'। शराबी उत्तर देता है, 'बड़ा अच्छा हूँ, क्यों सुखी देह को दु:खी करते हो पुकार-पुकार कर।' संसारियों की है यही अवस्था। कामिनी-काञ्चन में बेहोश। जोर करके उठाने जाओ तो बहुत कष्ट पाता है, कच्चा दाँत निकलने से जो होता है। तब भी उपाय है, गुरु सहायी हों तो सब हो सकता है। उनकी कृपा से हजार गाँठों वाली रस्सी भी खुल जाती है। गुरु कृपा! गुरु हुए सच्चिदानन्द। वे अवतार होकर आते हैं। उन्हें छोड़ और गुरु नहीं। गुरुकृपा, गुरुकृपा— गुरुवाक्ये विश्वास।

गुरुकृपा होने पर एक-एक करके परदा उठता जाता है और भीतरी mystery (ऐश्वर्य) देखकर लोग अवाक् हो जाते हैं। कामिनी-काञ्चन के भीतर रह-रह कर मन के ऊपर ऐसी गाँठ पड़ जाती है जो शीघ्र खुलना नहीं चाहती। ये प्रतिकूल संस्कार, एकमात्र गुरु बदल दे सकते हैं। 'गुरु मेहरबान तो चेला पहलवान।' गुरुवाक्य पर विश्वास के लिए ही तपस्या आवश्यक। तपस्या करने पर कुछ समझ में आ जाता है। Intellectually (विचार द्वारा) समझने के विषय नहीं हैं ये सब।

—07.08.1923

तपस्या क्या कोई और करता है? गुरु ही करता है, भक्त के द्वारा। यह भी है एक लीला। गुरु का उपदेश लेकर तपस्या करने पर उनके प्रति विश्वास हो जाता है। उनकी बात पर विश्वास होते ही हो गया। कर्म बहुत कम हो जाते हैं। वे स्वयं सब कुछ कर देते हैं तब। और गुरु का उपदेश बिना लिए तपस्या करने पर, पहले एक कोठरी बनेगी, उसमें बैठ कर

पुरश्चरण का आयोजन होगा; और दस जन देख कर कहेंगे, 'वाह, वाह, यह बड़ा साधु है।' गुरुकरण होने पर वे बतला देते हैं, उनको पुकारना चाहिए— अति गोपने और निर्जने। दूसरा कोई जान न पाए। निर्जने, गोपने तपस्या करने से स्व-स्वरूप को जाना जाता है, "मैं" कौन, पहचाना जाता है, उपाधियाँ सारी दूर हो जाती हैं— मैं अमुक का पिता, अमुक का पुत्र, ये सब।

—07.08.1923

खूब कठिन है घर में रह कर ईश्वर-लाभ। नाना आसक्तियों में ज़डित होना पड़ता है। फिर भी उनकी इच्छा से सब कुछ हो सकता है। एक कहानी है, एक व्यक्ति ऊँट खोजने गया चौमंजिले की छत पर। (सब का हास्य) अर्थात् ऊँट यदि चौमंजिले की छत पर मिल सकता है, तो भगवान को भी घर में रह कर पाया जाएगा। इतना कठिन होने के कारण ही तो ठाकुर कहा करते, 'नित्य सत्संग और व्याकुल प्रार्थना; और बीच-बीच में निर्जनवास चाहिए।'

—22.08.1923

सब की मीमांसा हो जाएगी साधुसंग करने से। मठ में जाइए। ठाकुर ने तो मठ इसीलिए कर दिया है। रोग हटाने जैसे हस्पताल में जाते हैं, वैसे ही 'अज्ञान'-रोग हटाना हो तो मठ में जाना चाहिए। मन का रोग हटाने वाला ऐसा उत्तम हस्पताल कहीं भी और नहीं पाओगे इस युग में।

—27.08.1923

तीन steps (पद) हैं। प्रथम— शास्त्र, द्वितीय— गुरुवाक्य और तृतीय— प्रत्यक्ष अर्थात् निजी अनुभव। गुरुवाक्य में विश्वास होते ही बहुत आगे बढ़ गया। गुरु असार छोड़, बालू झाड़, चीनी-चीनी केवल देते हैं। एकजन भक्त को ठाकुर ने बतलाया, 'आजकल अमुक खूब आगे बढ़ रहा है। उसे गुरुवाक्य पर विश्वास हो गया है।' और तृतीय है प्रत्यक्ष— माने उनके दर्शन करना। शास्त्र, गुरुवाक्य, प्रत्यक्ष— पर, पर अच्छे।

—29.08.1923

ईश्वर-दर्शन मनुष्य-जीवन का आदर्श है। यह निश्चय करके जो इच्छा हो, करो। तब पैर बिचलने की सम्भावना है कम। सब यदि यह करें, तब देश स्वाधीन हो जाएगा निमेष में। और ठाकुर को पकडऩा। ये हैं इस युग के आदर्श। भारत को उठाने आए। भारत के उठने पर जगत् उठेगा। भारत का उत्थान है अवश्यम्भावी।

—29.08.1923

पुरुषार्थ और ईश्वर पर निर्भरता— दोनों ही चाहिएँ। अभ्यास और वैराग्य। वैराग्य माने— ईश्वर पर अनुराग। ईश्वर पर विश्वास न हो तो चरित्र ही गठित होता नहीं। और यह सुन्दर बोले हैं, 'काज में लग पड़ो!' बैठे-बैठे विचार करने से होगा नहीं। लग पडऩा होगा। पुरुषार्थ चाहिए, तभी कृपा आएगी। वर्तमान समय में ठाकुर की बात सुनकर जो काज करेंगे, वे ही सुफल पाएँगे। उन्होंने कहा था, रो-रो कर उनसे प्रार्थना करो 'प्रभो, सुमति दो।' साधुसंग, प्रार्थना और चेष्टा— ये चाहिएँ।

—29.08.1923

तपस्या माने ईश्वर को जानने की चेष्टा। स्व-स्वरूप प्राप्ति की चेष्टा। अपने घर, अपने कमरे में जाने की चेष्टा। यह चेष्टा जो पहले से ही करके आए हैं, वे ही शीघ्र विश्वास करके पहचान लेते हैं। कणमात्र संशय रहता है तब भी उनके मन में। वे स्वयं ही वह संशय दूर कर देते हैं।

—30.08.1923

साधना की आवश्यकता है। काजकर्म में रहकर मन स्थिर नहीं होता। इसलिए बीच-बीच में निर्जन में चले जाना चाहिए। गीता में जभी तो निष्काम कर्म करने को कहा। ठीक-ठीक निष्काम कर्म करना हो तो बीच-बीच में एकान्त में चले जाना चाहिए। नहीं तो मन के ऊपर 'मुर्चा' लग जाता है। मुर्चा जानते हो?— जंगाल, मैल, आसक्ति। लगता तो है निष्काम करता हूँ, किन्तु भीतर हो सकता है, लोकमान्य की सूक्ष्म आकांक्षा रह रही है। जभी निर्जन में जाकर पकड़ा जाता है। घर में जो हैं, उन्हें तो है अवश्य दरकार। साधुओं को भी दरकार।

—30.08.1923

केवल लैक्चर से कुछ होता नहीं। निर्जने जाकर कुछ दिन साधन करने पर आस्वाद मिल जाता है। बीच-बीच में जाकर वह भाव दृढ़ हो जाता है। ईश्वर सत्य, जगत् अनित्य, दो दिन का— यह बोध पक्का होता है। तब लैक्चर बन्द हो जाता है, काज होता है ठीक-ठीक।

—30.08.1923

संसार के लोग चाहते हैं विषयानन्द, भक्त लोग चाहते हैं परमानन्द— ईश्वर को। तभी तो मन की बात अर्थात् ईश्वर की बात कहने पर भी समझते नहीं सांसारिक जन। कोई यदि पाँच वर्ष के शिशु को डारविन का क्रम-विकासवाद समझाने की चेष्टा करे तो शिशु कुछ भी समझेगा नहीं। चेष्टा विफल होगी। वैसे ही है विषयी के निकट परमार्थ तत्त्व बोलना! समझेगा नहीं, अच्छा लगेगा नहीं।

—31.08.1923

अपने लिए ही केवल काज करने की अपेक्षा परिवार के दस जनों के लिए करना अच्छा है। बहुजन कल्याण के लिए उससे भी बढ़कर भला है। इसकी अपेक्षा भी ईश्वर के लिए करना श्रेष्ठ है। अपनी देह, परिवार और समाज इन तीनों में ही ईश्वर-दृष्टि हो सकती है। निज देह है उनका मन्दिर; परिवार, समाज— ये भी उनके मन्दिर— वे ही सब होकर रह रहे हैं। सब के भीतर उनका चिन्तन करते हुए कार्य करना। इसका नाम है ईश्वरबुद्धि से काज करना। हमारे मिशन का काज इसी नींव पर प्रतिष्ठित है।

—01.09.1923

भक्त को देखने से भगवान् का उद्दीपन होता है। ईश्वर को लेकर जितना रहा जाए, उतना ही है real life (असली जीवन)। जो चौबीस घण्टे उनको लेकर रहते हैं, वे कौन हैं?

परमहंसदेव को देखा है दिवानिशि माँ, माँ; कभी समाधिस्थ— अन्तर् में माँ के संग एक हो गए। कभी भीतर भी उन्हें देखते हैं, बाहर भी उन्हें ही देख रहे हैं। जभी कहा करते, 'मोम का बाग, मोम का घर, बाड़ी— सब मोम का। अन्तरे बाहिरे मोम।' यह है अर्ध-बाह्य दशा; और बाह्य अवस्था में देखते हैं, माँ इसी जगत्-रूप में नाना रूपों में खेल कर रही हैं। तब भी

'माँ-माँ' किया करते। और प्रार्थना किया करते, 'अपनी भुवनमोहिनी माया में भुलाना न, माँ।' हम धन्य, उनके दर्शन किए हैं। जो बिना देखे भी विश्वास करते हैं, वे और भी धन्य हैं।

—02.09.1923

अभ्यास माने पुन:-पुन: एक ही वस्तु का चिन्तन करना। इसका ही नाम है तपस्या। मन जाता है विषय में, संसार-भोग में, अशान्त बालकवत्। उसे लाकर घर में बिठाना। कभी प्यार से, कभी समझा कर, कभी मार कर; जैसे माताएँ करती हैं बालकों के साथ। घर में माने उनके चरणकमलों में।

—05.09.1923

ऋषि जानते थे, ईश्वरलाभ जीवन का उद्देश्य है। जभी इस देश को इसी भाव से तैयार कर गए हैं। गिर गया था भारतवर्ष, अब फिर उठ रहा है। कोई रोक सकेगा नहीं। जगत् में अद्वितीय स्थान प्राप्त करेगा। ठाकुर आए ही इसीलिए, उन्होंने तभी कहा, गुरु-वाक्य में विश्वास। गुरु माने ईश्वर, अवतार, ऋषि। इनके वाक्य, गुरु-वाक्य सुनने से अध:पतन भी रुक जाएगा, भय भी दूर हो जाएगा।

—05.09.1923

●

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता (1915 – 2002)

- माँ सारदा के जन्मोत्सव पर सन् 1958 की प्रथम भेंट से ही स्वामी नित्यात्मानन्द जी की अन्तरंग शिष्या एवं उनके पश्चात् श्री म ट्रस्ट की आजीवन अध्यक्षा।
- स्वामीजी द्वारा रचित बंगला 'श्री म दर्शन' ग्रन्थमाला का प्रकाशन और उसका हिन्दी-अनुवाद तथा प्रकाशन।
- बंगला कथामृत का हिन्दी-अनुवाद तथा प्रकाशन।
- इनके पति प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा
  - — हिन्दी 'श्री म दर्शन' का M., 'the Apostle and the Evengelist' नाम से तथा
  - — हिन्दी कथामृत का 'Kathamrita' नाम से ही अंग्रेज़ी-अनुवाद और प्रकाशन।

अमरीका में उड्डीयमान ध्वज पर नाम : श्री रामकृष्ण

दिलीप कुमार सेनगुप्त
हिन्दी अनुवाद : सन्दीप नांगिया

[यह लेख श्री म दर्शन के लेखक स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के शिष्य श्री दिलीप कुमार सेनगुप्त की पुस्तक 'गुरु प्रणाम' में से लिया गया है। मूलत: बंगला में लिखी इस पुस्तक में कुल चार अध्याय हैं। प्रस्तुत लेख तीसरे अध्याय का हिन्दी अनुवाद है।]

अमरीका के शिकागो में अवतार के विषय में सुन्दर पश्चिमी युक्तिवादी ढंग से आलोचना सुनी। उस देश में, शिकागो में, रामकृष्ण मठ को कहते हैं वेदान्त सोसाइटी। वहाँ के मठाध्यक्ष तब 1962 में स्वामी विश्वानन्दजी थे।

अमरीका में मैं किसी भी रामकृष्णपन्थी साधु को नहीं पहचानता था। पहचानना तो दूर की बात, इनमें किसी का नाम भी नहीं सुना था। जान नहीं, पहचान नहीं, ये किस भाव से कार्य करते हैं, वह भी जाना नहीं। हठात् चिट्ठी लिख दी। वे किस प्रदेश के हैं, वह भी जानता नहीं; इसलिए अंग्रेज़ी में लिखा।

उत्तर भी आया अंग्रेजी में।

"तुम्हारी तरह युवक इस देश में साधारणतः आते नहीं। जो आते हैं, वे आते हैं या तो मज़ा लूटने, नहीं तो रुपये कमाने।"

वही जो लिखा था, "स्वामी विवेकानन्द की लीला प्रकट हुई थी शिकागो में। जहाँ पर धर्म महासम्मेलन अनुष्ठित हुआ था उस जगह को यदि सम्भव हो, दर्शन कर पाने पर धन्य होऊँगा", उसी से साधु महाराज खुश हुए थे। इतनी खुशी कि चिट्ठी अंग्रेज़ी में लिखने पर एक पंक्ति बंगला में लिखी " तुमि आमार भालोबाशा जानिबे" (तुम्हें मेरा प्यार)।

आगे अंग्रेजी में लिखा, "YMCA में ही ठहरोगे और check-in (चॅक इन) करते ही मुझे फोन करोगे।"

स्वामी विश्वानन्दजी को चिट्ठी लिखी थी न्यू यॉर्क से। उस बार न्यूयार्क में दो सप्ताह था। इसी बीच न्यूयार्क स्थित दो वेदान्त सोसाइटियों

के संग योगायोग हुआ। एक के मठाध्यक्ष थे स्वामी निखिलानन्द जी, दूसरे के स्वामी पवित्रानन्द जी।

स्वामी निखिलानन्द विख्यात हुए पाँच खण्ड 'श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत' एकखण्ड में और दो, कवर के भीतर 'Gospel of Sri Ramakrishna' के नाम से अंग्रेज़ी में अनुवाद करके। यही ग्रन्थ ही सारे विश्व में जहाँ-जहाँ 'गॉस्पल ऑफ श्रीरामकृष्ण' पठित होता है, वहाँ यथोचित श्रद्धा से आदृत होता है।

किन्तु, इसका एक 'किन्तु' है। जो रामकृष्ण के idea (विचार) के संग वैसे परिचित नहीं, गॉस्पल (कथामृत) क्या है, जानते नहीं, वे अन्य दिशा से समाज के शीर्षस्थानीय होने पर भी अनेक समय एकजन साधु के पास जो पाने की आशा करके आते हैं, वह निखिलानन्द जी के पास नहीं मिलता।

इसी प्रसंग में याद आती है सर ऑर्थर लाल की बात। उनके मुख से मैंने यह बात सुनी थी, एक पार्टी में।

United Nations (सयुंक्त राष्ट्र) में भारत के स्थायी प्रतिनिधि के Press Councillor (प्रैस काऊँसिलर) के घर एक छोटी cocktail party (कॉकटेल पार्टी) थी। Eastern Radio के प्रतिनिधि के साथ सब भारतीय संवादपत्रों के न्यूयार्क स्थित लगभग सब प्रतिनिधि आए हैं। ऑर्थर लाल जेनेवा में भारत के राष्ट्रदूत थे। तब उन्हें न्यूयार्क भेजा हुआ था। Security Council (सुरक्षा परिषद्) की प्रथम political committee (राजनैतिक सभा) में भारत द्वारा गोवा में 'दखल' की आलोचना के चलते। वे वहाँ भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

Mr. V.N. Chakravarti (श्री वी० एन्० चक्रवर्ती) United Nations (संयुक्त राष्ट्र) में भारत के स्थायी प्रतिनधि थे। वे भी अवश्य ही निमन्त्रित थे उस सन्ध्या पर। किन्तु किसी कारण से जैसे आ नहीं पाए थे।

यद्यपि ऑर्थर लाल के पास ही एक विराट् settee (सेटी) पर मेरा बैठना हुआ, प्रथमावधि काष्ठपुत्तलिकावत् समासीन था और भारतीय संवाददाताओं के साथ बीच-बीच में बात कर रहा था। Senior civillian (वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी) ऑर्थर लाल भारत सरकार के उच्चतम स्तर पर थे, उसी measure (हिसाब) से नीचे की ओर किसी स्तर पर मेरा

स्थान था। ऑर्थर लाल को मेरे साथ नमस्कार विनिमय के बाद और बात बढ़ाने का प्रयोजन दिखा नहीं।

हठात् क्या हुआ, मैं बोला, ''आपके प्रबन्ध का मैं विशेष भक्त हूँ। 'प्रबुद्ध भारत' में आपका लेखन पढ़ा है।"

वे खुश होकर हाथ बढ़ाकर मेरा हाथ पकड़कर बोले, " आपने पढ़ा है?"

कहा, ''हाँ, दोनों ही पढ़े हैं। केवल पढ़े ही नहीं, मुझे इतना अच्छा लगा था कि उन दोनों से नाना जगह पर, वक्तृता और लेख में, उद्धृति भी दी है।"

ऑर्थर लाल बोले, ''मैंने वो दोनों पत्रिका के लिए नहीं लिखे थे। स्वामी पवित्रानन्द के प्रभाव से वहाँ एक-दो वक्तृता देनी पड़ी। उसके बाद स्वामीजी ने उन दोनों को छापने भेजा।"

''आपका क्या उनके संग मिलना हुआ था?"

मैंने कहा, ''ना अभी भी मिलना हुआ नहीं। बात अवश्य दोनों जन के संग ही हुई है। स्वामी निखिलानन्द और स्वामी पवित्रानन्द, दोनों के संग ही।"

कहा, ''पवित्रानन्द के संग मिलिए। उनसे बहुत शान्ति पाएँगे।"

''मिलना तो निश्चय ही होगा," कहा। ''उन्होंने मंगलवार के दिन ही सन्ध्या में ध्यान की क्लास में योग देने को कहा है।"

''निश्चय ही जाइए," ऑर्थर लाल की शेष बात।

स्वामी निखिलानन्द जी ने एक दिन रात को खाने पर बुलाया। चार जनों ने खाया। स्वामी नित्यस्वरूपानन्द तब अमरीका में थे। नित्यस्वरूपानन्द ने तब उन्हीं दिनों ही गोल पॉर्क के Institute of Culture (इंस्टिट्युट ऑफ कल्चर) का कार्य शेष किया था। अमरीका घूम रहे थे। उसी शाम वे थे एवं एकजन अमरीकन। रामकृष्ण के साधुओं को छोड़कर बाहर के व्यक्तियों में केवल मैं था। नाना बातों में जिज्ञासा की गई, ''अमरीका में आपका प्रोग्राम क्या है?"

कहा, ''सारा अमरीका घूम कर देखना, पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण स्पर्श करके देखना, और क्या?"

''यहाँ से कहाँ जाएँगे?"

''डेट्रायट होकर शिकागो।"

''शिकागो में तो हमारी वेदान्त सोसाइटी है। किन्तु वहाँ के अध्यक्ष स्वामी विश्वानन्द का शरीर आज कल विशेष अच्छा नहीं चल रहा है।"

''मैंने उनको चिट्ठी लिखी थी, उत्तर भी पाया था।"

उन्होंने आखिरी चेष्टा की मेरे हाथ से विश्वानन्द जी को बचाने की। मैं जैसे उन को तंग न करूँ।

निखिलानन्द जी और नित्यस्वरूपानन्द जी ने आँखों-आँखों में कुछ बात की। किन्तु मैंने तो देख लिया। और मैंने जो देख लिया, वह वे दोनों साधु भी जान गए। निखिलानन्द जी बोले, ''बात यह है कि, विश्वानन्द जी दमे के आक्रमण से अस्वस्थ होकर हस्पताल में तीन मास थे। ये कुछ दिन हुए ही लौटे हैं, उनका मन, मिज़ाज़ भी अच्छा नहीं रहता, लगता है, ज़रा चिड़चिड़े भी हो गए हैं।"

''उन्होंने मुझे निर्देश दिया है YMCA में रहने का, और पहुँचते ही check-in (चेक इन) करते ही उनको फोन करने का।"

''तब तो बहुत अच्छी बात है।"

''खूब अच्छी बात तो है ही।" स्वामी पवित्रानन्द परिष्कार कर बोले कि आपकी तो उनके साथ बातचीत हो ही चुकी है।

बताया, ''देखिए, अमरीका में हमारे साधुओं के बीच विश्वानन्द जी का खूब नाम है। साधु के हिसाब से उनको हम खूब आदर करते हैं। उनके पास से आप यदि कुछ पाते हैं, अपने आप को भाग्यवान् समझें।"

शिकागो YMCA में check-in (चेक इन) करते ही अपने कमरे में घुसने से पहले ही विश्वानन्द जी को फोन किया। बात और खत्म नहीं होती, आशा और मिटती नहीं। लिफ्ट के सामने समान रखकर public booth (सार्वजनिक कक्ष) में घुसकर फोन करने लग गया, अनेक क्षण बाद भी छोड़ नहीं रहा देखकर liftman, bell boy (लिफ़्ट-चालक और भारवाहक) आकर सतर्कवाणी उच्चारण कर गया, " फटाफट न आने पर सामान चोरी हो सकता है, सावधान।"

अमरीका में ऐसी बात सुनना भी एक अनुभव था जिसके लिए मैं प्रस्तुत नहीं था। किन्तु प्रसंगान्तर हो रहा है। विश्वानन्द जी चाहते थे मेरी background (पृष्ठभूमि) जानना। बताया, ''स्वामी विवेकानन्द के अन्तिम

दीक्षित संन्यासी शिष्य को स्पर्श किया था।" स्वामी सदाशिवानन्द, भक्तराज महाराज— इनकी बातें कहीं। स्वामी विवेकानन्द के शेष गृही शिष्य मन्मथनाथ गांगुली की बातें कहीं। जिन्होंने गुरु प्रसाद से उनको जो रूप-दर्शन और अरूप-दर्शन हुआ था, उसकी बात भी मुझे कृपा करके कही थी। वह सब उन्होंने सुना।

वे मेरे आश्रयदाता श्रीमत् स्वामी नित्यात्मानन्द जी की बातें सब से अधिक जानना चाहते थे। उन्होंने कहा, "मैं जगबन्धु महाराज को बहुत प्यार करता हूँ, श्रद्धा करता हूँ। वे जब मठमिशन का निरापद आश्रय त्याग कर तपस्या करने के लिए बाहर आ गए थे, तब उनका शेष जीवन कैसे कटेगा, उसकी कितनी चिन्ता थी। तुमसे सब सुनकर निश्चिन्त हुआ।"

'श्री म दर्शन' ग्रन्थावली जो छप रही है— उन्होंने वह बात सुनी। कहा, "काली कमली वाले बाबा के छत्र में साधुओं को जो रोटी-दाल मिलती है, वह लाईन लगकर लेते हुए, वहाँ से दैनान्दिन क्षुधा-निवृत्ति का आहार संग्रह करके ऋषिकेश के तुलसी मठ में रहकर कठोर तपस्या का जीवन यापन कर रहे हैं। शीत में हिमालय से आ जाते पंजाब में। युक्त प्रदेश (United Provinces) में भक्तों के घर घर, यहाँ तीन दिन, वहाँ सात दिन काट कर मार्च मास में फिर ऋषिकेश लौट जाते हैं।

"असाधारण ग्रन्थमाला हुई है 'श्री म दर्शन'। श्री म जैसे थे श्रीरामकृष्ण की कथा के भण्डारी, प्रतिदिन डायरी में लिख रखते, क्या देखा, क्या सुना, या कौन आया, कौन-से दिन श्री रामकृष्ण के पास, अनुरूप भाव से जगबन्धु महाराज, जो ब्रह्मचारी के रूप में श्री म के पास मॉर्टन स्कूल की छत पर टीन के कमरे में रहा करते, और जो सब देखते, सुनते, डायरी में लिख रखते। बीच-बीच में श्री म चैक करते, ठीक लिखा है कि नहीं, देखते। बीच-बीच में एक से अधिक भक्त को एक ही अनुष्ठान 'cover' (कवर) करने के लिए भेजते। एकजन और एक जन को न बता कर ले आते, उससे भी श्रीम समझ पाते किसकी coverage (विवरणिका) कैसी है। तथ्य का याथार्थ्य किसका कितना है। फिर एक ही तथ्य कौन, कितना आकर्षक करके पेश करता है एवं क्या वह आकर्षक हुआ या नहीं हुआ। इस तरह करके हाथ पकड़कर श्री म ने जगबन्धु महाराज का गढ़न किया।

" 'श्री म दर्शन' प्रकाशित करने के लिए एक ट्रस्ट का गठन किया स्वामी नित्यात्मानन्द जी ने। उसी ट्रस्ट के प्रेज़िडेण्ट वे स्वयं बने, सेक्रेटरी श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता। श्री म ट्रस्ट नाम से कथित यह संस्था स्थापित हुई 1967 साल की 12वीं दिसम्बर को। इसका मुख्य उद्देश्य है जनता-जनार्दन की सेवा एवं भारतीय ऋषियों और महापुरुषों की भावधारा का अनुसरण करके जनजीवन का नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पुनरुज्जीवन करना। और इसका विशेष उद्देश्य था युगावतार श्रीरामकृष्ण देव के परमप्रिय पार्षद और अन्तरंग भक्त श्री महेन्द्रनाथ गुप्त महोदय के दैनिक कथोपकथन का जो अनुलेखन श्री नित्यात्मानन्द जी ने डायरी के आकार में रखा हुआ था, उसे ग्रन्थाकार में खण्ड-खण्ड में प्रकाशित करके एक विराट् ज्ञानयज्ञ का अनुष्ठान करना। 'श्री म दर्शन' प्रथम बंगला संकलनरूप में इस ट्रस्ट के उद्योग से प्रकाशित हुआ, उसके बाद यह महाग्रन्थ हिन्दी और अंग्रेज़ी में अनुवादित और प्रकाशित हो रहा है। श्री म को 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत जैसे भावीकाल के लिए एक अमृतोपहार है, वैसे 'श्री म दर्शन' भी एक ज्ञानसागार में अवगाहन करके संसार-ज्वाला से जर्जरित असंख्य मनुष्यों के जीवन में नूतन चेतना लाभ का एक अमृत सुयोग है।

"इस महाग्रन्थ की रचना और संकलन के लिए स्वामीजी को कठोर परिश्रम करना पड़ा। एकादश खण्ड शेष करने पर द्वादश खण्ड की रचना के समय एक व्यक्तिगत चिट्ठी में उन्होंने लिखा, 'आँखों को जोर करके चलाया जा रहा है भीतर की प्रबल प्रेरणा से।' "

दक्षिण की एक माँ ने सुदूर केरल से पूर्व के बेलुड़ में आकर मठाध्यक्ष के संग मिलकर चरणवन्दना की। गुरुप्रणाम शेष करके बोली, "महाराज, मेरे इस शरीर-रूप देह वृक्ष पर जितने फल फले थे, उनके मध्य यही श्रेष्ठ फल है। संग के युवक को दिखाया। यह बराबर फर्स्ट (प्रथम) आता है। इस बार एम०ए० में भी प्रथम हुआ है।

"मैं उसको लेकर आई हूँ यह निश्चय करके कि आपके चरणों में उत्सर्ग करुँगी। दया करके उसको साधु बना लें।"

बाबा, यह फिर कैसी माँ है– "अपनी देह का श्रेष्ठ फल साधु के चरणों में उत्सर्ग कर दिया। इसे आप दया करके ग्रहण करें। इसको साधु बनाएँ।"

कैसी माँ और कैसा लड़का!

माँ खुद हाथ पकड़कर युवक लड़के को लाकर कहती हैं, इसको मठ का साधु बना दें। 'निमाई संन्यास' नाटक रुप खज़ाने में निमाई के लिए शची माता का रोना हर बंगाली के कान में ध्वनित हो रहा है। इस तरह की माँ की बात सोचते ही हमारा हृत्स्पन्दन जैसे थम जाता है।

और यह कैसा लड़का रे बाबा! माँ बोली, "तुम साधु बनो," और लड़का झटपट करके साधु होने चला! इस युग में! इसे कैसे सोचा जाए! विशेषकर ऐसा brilliant लड़का।

माँ कैसे ही देखना होगा तो!

ऐसा कहने की इच्छा हो रही है - पूजनीय जगबन्धु महाराज जी के देहवृक्ष के सब फलों के बीच श्रेष्ठ फल हुईं श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता! युक्तप्रदेश की गुप्ता। पति राजकीय सेवा में Post Graduate College (स्नातकोत्तर महाविद्यालय) के Principal (प्राचार्य) हैं।

इनकी बड़ी लड़की प्रेम है। M.B.B.S. डॉक्टर। मेडिकल सर्विस में नियुक्त। जमाई इण्डियन ऑयल में बड़े अफसर। छोटी का पति कॉलिज में अध्यापक।

एक ही लड़का है, Chartered accountant, साथ ही Cost accountant भी। अल्प वयस् में ही Chartered accountant, दफ़्तर के Technical Director हुए। मध्या कन्या वीणा।

स्वामी जी ने जिनको दीर्घकाल पकड़ कर 'स्तनपान' करवाया है उनको ही यदि उनके भक्त या शिष्य कहूँ, तो कुल मिलाकर कम से कम पच्चीस जन उनके भक्त थे। Recorded (अभिलिखित) भक्त। इनके मध्य सर्वश्रेष्ठा श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता हैं।

स्वामी जी का ईश्वर देवी के संग घनिष्ठ परिचय हुआ जब उनकी बड़ी लड़की ने M.B.B.S. डॉक्टर बनकर सरकारी मेडिकल सर्विस में योगदान दिया। द्वितीया लड़की भी खूब शिक्षित है, छोटी लड़की कॉलिज में ऊँची क्लास में पढ़ रही थी, लड़का Chartered accountancy पढ़ने में उद्यत था।

ऐसे समय ईश्वरदेवी गम्भीर और संकटापन्न असुख से आक्रान्त हुई। खूनी दस्त आरम्भ हो गया। लड़की तब अमृतसर में Government (राजकीय) हस्पताल में थी, उसी जुगाड़ से, चेष्टा आदि करके माँ को

हस्पताल में लाकर भर्ती किया। वहाँ [डॉक्टर] बोले, "पेट में अल्सर (फट) burst हो गया है।" कितने दिन यम और मनुष्य में खींचतान होने के बाद श्रीमती गुप्ता विपन्मुक्त हुईं।

किन्तु जब वे आच्छन्न हुए पड़ी हुई थीं तब हस्पताल में एक लीला क्रीडा हुई। उन्होंने देखा श्री रामकृष्ण की बालक मूर्ति पेट के ऊपर बैठकर सूई धागा लेकर जैसे पेटपर सिलाई कर रही है। इसी दर्शन के बाद उनका ज्ञान पूरा लौट आया। उसके बाद हस्पताल में जितने दिन थीं, उतने दिन रामकृष्ण के अनुध्यान में कटे।

घर लौटकर गृहस्थ में घोषणा कर दी, "मर ही तो जाती, श्री रामकृष्ण की कृपा से इस जीवन को फिर से पाया है। संसार के पास में मरी हुई ही रहूँगी, मेरे ऊपर संसार का और कोई दावा रहेगा नहीं। बाकी जीवन उनके काज में, उनकी सेवा में व्यय करुँगी। नित्यात्मानन्द जी की सहायता से उन्होंने बंगला वर्णपरिचय जुगाड़ कर लिया, बंगला में लिखना, पढ़ना, बोलना सीखा। उसके बाद 'श्री म दर्शन' प्रथम भाग हिन्दी में अनुवाद करना आरम्भ किया।

मूल बंगला में लिखित पूजनीय जगबन्धु महाराज ने जो 'श्री म दर्शन' की पाण्डुलिपियाँ जमा की हैं, कैसे, कब, कहाँ छापी जाएँगी, वह वे जानते नहीं थे। छापने के लिए उनका जो कोई दायित्व है, वह मन में भी नहीं था। कहते, "डायरी से पाण्डुलिपि तैयार करना मेरे लिए निर्दिष्ट कार्य था। ठाकुर वह मेरे द्वारा सम्पन्न कर रहे हैं, अब बाकी कार्य जो है, छपाना इत्यादि वह मेरे द्वारा करवाएँगे नहीं। उसके लिए अन्य व्यक्ति जुगाड़ होगा।" वह अन्य व्यक्ति थीं श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता।

स्वामी जी की बड़ी इच्छा थीं कि यह व्यक्ति हों बंगाली। किन्तु वही जो श्रीरामकृष्ण की कथा में हैं ना, एक भूत एकजन संगी को ढूँढ रहा था, कोई अपघात से मरने जा रहा है, सुनकर वह तत्क्षणात् जा कर हाजिर हो जाता, किन्तु हर बार ही जाकर देखता है, आदमी बच उठा, उसे और संगी नहीं मिल पाता। स्वामी जी का भी वैसे ही। विद्वान्, बुद्धिमान्, संस्कारवान्, अन्य दिक् से उपयुक्त बंगाली भक्त देखते ही सोचते, "लगता है यह मेरी पाण्डुलिपि के trunk का भार लेगा," किन्तु किसी को यह बाधा, किसी को वह। कोई दायित्व लेने के लिए राज़ी नहीं।

शेष पर्यन्त यह अबंगाली महिला आगे आई। समस्त दायित्व लिया। अर्थ संग्रह करने लगीं लाज-लज्जा छोड़ कर। समाजिक मानमर्यादा गई चिता में। आत्मीय स्वजन सब समाज के मान्यगण्य हैं। उनके सन्ध्या वेला में drawing room में आकर बैठते ही ईश्वर देवी चन्दा माँगती ही। इससे आत्मीयस्वजनों की प्रतिष्ठा को धक्का लगता। सो आत्मीयों ने प्रायः घर पर आना बन्द कर दिया।

उनके पहने के लिए नहीं है झलमल साड़ी, गहने या कोई दामी वस्तु। कोई विवाह की निशानी भी नहीं। आत्मीयबन्धु सब नाराज़।

यहाँ रुपए संग्रह होते, छपने का कार्य आगे चलता। कलकत्ता के जनरल प्रिन्टर्ज के स्वत्वाधिकारी सुरेशचन्द्र दास महाशय बेलुड़ मठ के दीक्षित भक्त हैं। उन्होंने छापना अंगीकार किया है। क्रम से द्वितीय, तृतीया, चतुर्थ भाग प्रकाशित हुआ।

'श्री म दर्शन' के प्रथम भाग का ईश्वर देवी गुप्ताकृत हिन्दी-अनुवाद भी स्वयं प्रकाशित किया।

बंगला में लिखित आदिग्रन्थ से अंग्रेजी में अनूदित श्री म दर्शन का प्रथम भाग छप गया। अनुवाद किया स्वामी नित्यात्मानन्द ने स्वयं। अनुवाद के व्यापार में श्री म का जो मतामत था, जो बात वे कथामृत अनुवाद के समय ही व्यक्त कर गए हैं स्वामी अव्यक्तानन्द को लिखित चिट्ठी में, उसे आदर्श रूप में ग्रहण कर स्वामी जी का अंग्रेज़ी अनुवाद हुआ है। मूल बंगला में जो भाव है, अनुवाद में वह रक्षित रहे, अनुवाद की भाषा के सौकर्य के सामने जैसे वह हार न जाए, वह अवश्य देखना होगा। असली है भाव, मूल का भाव।

किन्तु यह कैसे सोचा जाए? ग्रन्थकार स्वामी नित्यात्मानन्द जी ऋषिकेश की तपःक्लिष्ट देह की क्षुधा-निवृत्ति भिक्षालब्ध दाल-रोटी द्वारा किसी प्रकार करते हैं, उनके द्वारा रचित अमूल्य ग्रन्थ 'श्री म दर्शन' प्रथम भाग को छापने के लिए अर्थ भिक्षा करके संग्रह किया था। कोई कभी सोच भी नहीं सकता इस ग्रन्थमाला के बाकी समूह किस प्रकार छपेंगे। किन्तु आज तो हम देख सकते हैं कि बंगला में समस्त सोलह खण्ड ही छप गए हैं। ईश्वर देवी गुप्ता-कृत हिन्दी-अनुवाद भी सात-आठ खण्ड बाहर हो गया है।

प्रिन्सिपल धर्मपाल गुप्ता ने चार-पाँच खण्ड अंग्रेज़ी अनुवाद भी ग्रन्थकार की निर्देशित धारा में प्रकाशित किए हैं।

दोनों जन की देह प्रायः विकल है। ईश्वर देवी गुप्ता का तो आज कई वर्ष हुए देह-मल शरीर के स्वाभाविक पथ से निर्गत नहीं होता। अस्त्रोपचार कर डॉक्टरों ने एक कृत्रिम रास्ता तैयार कर दिया है वहाँ से निसृत होकर कमर के निकट पेट की दाईं ओर लटकी एक थैली में जमा होता है। इसी प्रकार चलता है। किन्तु उनके श्री म दर्शन के कार्य का विराम नहीं, मुख सदा हास्यमय, प्रफुल्ल और प्रस्फुटित कमल की तरह।

गुप्ता जी ने एक विपुलायतन अंग्रेज़ी ग्रन्थ श्री म की जीवनी प्रकाशित की है। उनका magnum opus (बृहत् कार्य)।

ये सब हुए श्री रामकृष्ण की कर्मधारा में अधिकतर संयोजन। जैसे श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने पूज्यपाद स्वामी नित्यात्मानन्द जी के निर्देश से एक मन्दिर निर्माण किया है। उसका नामकरण महाराज ने किया है "श्री रामकृष्ण कथामृत पीठ" ("श्री पीठ")। वहाँ पर नित्य ठाकुर-माँ-श्रीम-स्वामी विवेकानन्द की पूजा होती है। सन्ध्या में कीर्तन, भजन, पाठ चलता है।

ईश्वरदेवी गुप्ता के प्रसंग में बेलुड मठ के प्रचीन साधु पूजनीय स्वामी अभयानन्द जी, सब के भरत महाराज ने, एक बार कहा था, "मैं इनके बारे में जानता हूँ, सुना है। स्वामीजी (विवेकानन्द) इनको देखकर खुश होते। खूब तेजस्विनी महिला हैं। वे तो इस तरह ही लड़कियों को होने को कहते।"

स्वामी नित्यात्मानन्दजी ईश्वर देवी गुप्ता को मम्मी कहकर उल्लेख करते। एक व्यक्तिगत चिट्ठी में उन्होंने लिखा, "दीदी के मुख में जैसे ठाकुर बैठकर बातें करते हैं। यहाँ (मण्डी में) नाना धर्ममत हैं। किन्तु ऐसी तेजस्विनी भाषा में जीवन्त भाव और कोई बोला नहीं।... प्रोफेसर, वक्ता अनेक आते हैं। किन्तु धर्म और सामाजिक चिन्ता में प्राण संचार कर पाते नहीं। जैसे दीदी की वक्तृता में होता है।"

इसी समय मण्डी में एक cottage में श्रीरामकृष्ण— श्री म प्रशिक्षण स्थापना की जाए या नहीं, ईश्वर देवी गुप्ता यह चेष्टा भी करती हैं।

प्रकृत ही, वे हुईं मूर्तिमती तेज और कर्म। भारतकी नारी जाति से स्वामी विवेकानन्द ने जैसी आशा की थी— भाव और कर्म का मिलन— "मैं पुरुषों को जो कह चुका हूँ, नारियों को भी ठीक वही बात ही कहूँगाः भारत और भारतीय धर्म में श्रद्धा और विश्वास रखो।"

शिकागो शहर में पहले पहुँचते ही जो स्वामी विश्वानन्द जी के संग फोन पर बहुत देर तक उपर्युक्त बात हुई थी, तब उसकी शेष बात थी, " 'श्री म दर्शन' प्रथम भाग एक प्रति मुझे भिजवाना अवश्य। Surface mail से। समझे!"

और उसके बाद बोले थे, "कल सकाल साढ़े आठ अवश्य आओ वेदान्त सोसाइटी में। मैं बोलूँगा। तुम सिर्फ सुनोगे। कल तुम्हारे साथ मेरी कोई बात नहीं होगी। यहाँ की रीति के अनुसार सब गिरजों में जिस समय sermon (प्रार्थना) होती है उसी समय हमें भी बोलना होता है। कारण यहाँ के लोग उसी समय ही चर्च में आने के अभ्यस्त हैं। वक्तृता के बाद हमारे दहलीज़ पर खड़े रहते, बाहर जाते समय लोग एक-एक करके, दो-एक बात हमसे पूझने पर हमें उस बात का उत्तर देना होता है। फिर कल एक technical institute के छात्रों का एक दल आएगा। इसलिए कल और तुम्हारे संग बात नहीं कर पाऊँगा। तब भी कल सन्ध्या को तुम्हें रोज़ और हैरी ग्रेयर अपने घर पर खाने का निमन्त्रण देंगे और गाड़ी से ले जाएँगे Y.M.C.A से। उनके संग कथावार्त्ता करके आनन्द पाओगे। वे तुमको शहर की समस्त देखने की जगहों पर भी ले जाएँगे।

"मैं सब व्यवस्था कर दूँगा।"

अगले दिन रविवार सकाल समय हैरी ग्रेयर गाड़ी लेकर आ उपस्थित हुए, वेदान्त सोसाईटी ले जाएँगे।

गाड़ी चलाते-चलाते हैरी बोले कि स्वामी विश्वानन्द ही उनके गुरु हैं। उन्होंने इनका नूतन नामकरण किया है रमा और हरिदास। रमा वेदान्त सोसाइटी में प्रतिदिन सकाल जाती हैं स्वामीजी का खाना पकाने के लिए। प्रदिदिन सन्ध्या में वे पूछने के लिए जाते हैं कि कल वे (स्वामीजी) क्या खाएँगे, कल के लिए बाज़ार से क्या लाना होगा।

प्रति रविवार हैरी जाकर मन्दिर सम्मार्जना करके आते हैं vacuum cleaner से। मास में एकबार जाकर स्वामीजी के बाल काट आते हैं।

संक्षेप में, ये भक्त दम्पति भारतीय ढंग से गुरुसेवा कर रहे हैं।

पवित्रानन्दजी ने कहा था, अमरीका में रामकृष्ण साधुओं के मध्य स्वामी विश्वानन्द साधु के हिसाब से अग्रगण्य हैं। वक्ता के हिसाब से भी वैसे ही। स्वामी विश्वानन्द जी उस दिन Reincarnation of God वा अवतारत्व को लेकर बोले।

''ईश्वर के पञ्चकृत्यों में एक 'निग्रह' है— सृष्टि, स्थिति, प्रलय, निग्रह और अनुग्रह। निग्रह माने अवतारूप में मनुष्य-देह धारण जनित कष्ट स्वीकार करना।

''क्यों करते हैं?

''धर्म-पथ पर जगत् को चालित करने के लिए।

''किस प्रकार करते हैं?

''मरणशील जगत् के संग आध्यात्मिक जीवन का कोई विरोध नहीं है। संसार यदि imperfect (असिद्ध) है, अवतार दिखा देते हैं मनुष्य किस तरह imperfection (असिद्धि) से perfection (सिद्धि) पर चढ़ सकता है।

''दूसरा, भगवान का अनावृत ऐश्वर्य मनुष्य के दृष्टिगोचर हो ही नहीं सकता। It is conveyed to us through the instrumentality of manhood (वह हमें दृष्टिगोचर होता है मानवता के उपकरण से ही)। श्री रामकृष्ण कहा करते, 'अवतार जैसे है एक बड़े मैदान की ऊँची दीवार में एक बड़ा छेद। जिसके बीच से उस पार का बहुत-सा देखा जाता है,' अर्थात् मनुष्य के भीतर से ही ईश्वर का ऐश्वर्य देखा जाता है।

''तीन, मनुष्य जब अपनी चरम और परम गति लाभ करता है when it ascends to the fulfillment of its destiny, तब मनुष्य जीवन के constituent (उपकरण) क्या होते हैं, वह हम समझ सके हैं।

''चार, अवतार अपने सारे जीवन द्वारा मनुष्य को शिक्षा देते हैं। इसीलिए उनका आगमन होता है। He comes to teach the mortals (वे मनुष्यों की शिक्षा के लिए आते हैं)। वे साधारण मनुष्यों की तरह क्षुधा, तृष्णा, शोक, दुःख, विरह, वेदना सब भोग करते हैं एवं उस सब से ऊपर उठते हैं जिससे मनुष्य संसार की दहनज्वाला सहन करने का साहस पाता है।

''और उसके बाद केवल हमें शिक्षा ही नहीं देते। He offers himself as a channel of Grace. He helps us to become what we potentially are (वे स्वयं को कृपा का माध्यम बनाकर मनुष्य की भीतरी शक्ति को जागृत करने में सहायक होते हैं)। श्रीरामकृष्ण कहते, 'अवतार जैसे गाय के थन हैं।'

''पाँच, श्रीरामकृष्ण कहा करते, 'अवतार को कैसे जानोगे? इसके भीतर उनकी कथा सुनाई देती है।'

''वृन्दावन में कृष्ण गोपियों के संग जो लीला कर गए हैं, उनका अब भी कोई-कोई भाग्यवान् साधक अपने हृदय में नित्य आस्वादन करते हैं, इसीलिए अवतार के जन्म का historical fact is an illustration of a process in unfolding in the heart of men (ऐतिहासिक तथ्य मानव के हृदय की प्रस्फुटन प्रक्रिया का उदाहरण है)।

''बुद्ध ने कहा था, 'समय-समय पर एकजन तथागत इसी पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं, a fully enlightened one, unsurpassed as a guide to erring mortals. He proclaims the truth both in its letter and spirit, lovely in its origin, lovely in its progress and lovely in its consummation—a higher life is to be made known in all its purity and in all its perfectness (एक पूर्ण ज्ञानी, भूल चूक भरे जीवों के महानतम गुरु। वे सत्य की सुस्पष्ट घोषणा करते हैं—सत्य जिसका कि आदि, वृद्धि और अन्त भी प्रिय है—एक उच्च जीवन प्रकाशित करता है पूर्ण पवित्रता और पूर्णता के साथ)।

''महायान बौद्धधर्म कहता है, 'परवर्ती बुद्ध का नाम होगा मैत्रेय।'

''भारतीय धर्म विश्वास नहीं करता कि at one unique instant of time (एक समय में) ईश्वर का exclusive revelation (मात्र एक ही प्रकाश) होगा।

''अवतार को लोग पहचान पाते नहीं। श्रीरामकृष्ण कहते, 'अचिना गाछ (अबूझ वृक्ष)।'

''राम को भरद्वाजादि मात्र बारह जन ऋषियों ने अवतार जानकर ग्रहण किया था।"

विश्वानन्दजी के नूतन भाव से अवतारत्व के विषय में बताना बहुत अच्छा लगा। यीशु की बात का भी अवश्य उल्लेख किया। वे थे Son of man, who was the son of God (वे थे मानव के पुत्र रूप में अवतार) इस बात की व्याख्या की। दो बातें हैं यहाँ। एक, उनके miracle (चमत्कार) का प्रसंग नहीं उठाया, एक बार भी। और दो, यीशु ने जिस कठोर त्याग धर्म की शिक्षा दी थी, वह उठाई नहीं।

उस दिन रात के आहार पर आमन्त्रित किया था ग्रेयर दम्पति ने। सन्ध्या होते-होते ही गाड़ी लेकर आ उपस्थित हुए। ब्रह्मचारी जन जो मठ में ही रहते हैं स्वामीजी की सेवा के लिए, वे भी आ गए। हम सिर्फ़ यही चारजन खाने की टेबल पर थे। उनका एक लड़का और एक लड़की, उनके संग परिचय हुआ। किशोर, किशोरी। स्वामी ने नाम रखे थे, गणेश और लक्ष्मी।

लड़के ने मुझसे जिज्ञासा की, ''तुम्हारा क्या कोई spiritual name (आध्यात्मिक नाम) भी है?' उसकी माँ ने झटपट समझा दिया, ''स्वामी जी ने हमारा नाम दिया था रमा और हरिदास, वह तभी आपको पूछ रहा है, आपका वैसा नाम है या नहीं।" सुनकर तो मैं हो-हो करके हँस उठा।

''Yes, rather a pompous one. (हाँ, एक है, बहुत ही विशेष)।"

''वह क्या?"

''ऊँकार।"

रमा शब्द के माने समझ गई। लड़के को उसकी समझ के अनुसार समझा दिया।

इस समय टेलिफोन बज उठा। हैरी ने उठाया। स्वामीजी की आवाज़। मैं पहुँचा हूँ कि नहीं, लगता है पूछा। तब मेरे साथ बात करनी चाही। क्या खा रहा हूँ, जानना चाहा, कैसा पका हुआ है, अच्छा लग रहा है या नहीं इत्यादि। उसके बाद असली बात कही।

''सुनो, जो जो बड़े बड़े साधुओं के संग तुम्हारा मिलना हुआ है, उन सब की बात तुम सब उनको बताओ। वे भारतीय भक्तों की तरह समझ सकते हैं, सब बात समझेंगे।"

''जी अच्छा।"

''कल सुबह ग्यारह, मुझे फोन करो।"

"जी अच्छा।"

"तुम्हें असुविधा तो नहीं होगी?"

"जी नहीं।"

"तब फोन करना। सुबह ग्यारह। क्यों? मैं ज़रा बाद में आराम करने जाऊँगा। रात को ज़रा देर से नींद आती है," उन्होंने क्लान्त स्वर से कहा।

एक ओर बुढ़ापे का बोझ, उसके ऊपर दुरारोग्य व्याधि, दुरन्त दमा (asthma)। तीन मास हस्पताल में रहकर आए हैं, यही तो सुन आया था न्यूयार्क में।

किन्तु यह सब होने पर भी मेरी दैहिक कुशलता की रक्षा के लिए कितनी व्यग्रता है! उनके पूर्वपरिचित और प्रिय एवं श्रद्धा के पात्र जगबन्धु महाराज की सन्तान जैसे उनके आश्रय में दो दिन बिताने आई है, उसके अब ठीक-ठाक देश लौटने पर ही निश्चिन्त होंगे।

उस रात, वही उनकी शेष बात थी।

"और सुनो, वही जो कहा था combined underwear, woollen vest और woollen underwear एकसंग डाला जाता है—उसे कल ही खरीद लाओ, देरी करो नहीं। किसी को साथ लेकर downtown जाकर ले आओ। समझे?"

फोन रखकर सत्प्रसंग में लौट आया। स्वामी विवेकानन्द के शेष संन्यासी शिष्य भक्तराज महाराज और शेष गृही-शिष्य मन्मथनाथ गांगुली महाशय की बातें कीं।

"स्वामी विवेकानन्द के दर्शन करने से पहले ही भक्तराज महाराज की ब्रह्मचर्य दीक्षा हुई थी, विशिष्टाद्वैतपन्थी भक्तिमार्ग में, दक्षिण के श्री सम्प्रदाय से। नवीन ब्रह्मचारी तिलक आदि के अभ्यस्त हों उठे और वैष्णवोचित आचार-आचरण में।

"यही वैष्णवी विनय शेष पर्यन्त उनमें था। मन्मथनाथ गांगुली महाशय के घर आए हैं, इस खबर को पाने पर जब उनके संग मिलने गया, इसी विनीत आचरण को मैंने देखा था। प्रायः हतवाक् हो गया जब विदाई लेते समय उनको प्रणाम करके जा रहा था, उन्होंने अत्यन्त कुण्ठा के संग प्रणाम ग्रहण किया। बोले, 'बड़ी कृपा की मुझ पर, दया करके स्वयं आकर दर्शन दे गए। यदि सम्भव हो तो फिर दर्शन पाकर सुखी होऊँगा।'

''इतनी मधुर भाषा जीवन में यह प्रथम बार ही सुनी थी। संन्यासी जगद्गुरु, सारा विश्व उसके चरणों में प्रणत होगा, यही तो सुनता आ रहा हूँ। उसकी जगह यह क्या?

''स्वामी विवेकानन्द के प्रथम दर्शन हुए एक किशोर volunteer (स्वयंसेवक) के रूप में जब उनके शहर में विवेकानन्द आए थे जगज्जय करके।

''उनको देखते ही उनके पाँव में शीष अर्पित कर दिया भक्तराज महाराज ने। स्वामी विवेकानन्द ने उनको छाती से लगा लिया। क्षेत्र तो तैयार था ही, केवल बीज बोना था।

''उनका साधु नाम हुआ स्वामी सदाशिवानन्द।

''तरुण मन्मथनाथ को स्वामी विवेकानन्द ने तो दीक्षा दी। साधु होने के प्रसंग में उनको बोले, 'सब को ही जो साधु होना होगा, ऐसी कोई बात नहीं है। अपने मन की जाँच कर लें। भीतर-भीतर जलने के बजाए विवाह कर लेना बहुत अच्छा है।'

''मन्मथनाथ ने बाद में विवाह कर लिया। तीन लड़के हुए, पूर्णेन्दु, शैलेन और 'नाना'। पूर्णेन्दु फगवाड़े की चीनी की फैक्ट्री में चीफ़ कैमिस्ट थे। शैलेन कानपुर में शिक्षक हुए। और कनिष्ठ 'नाना' आई.ए.एस. परीक्षा देकर उच्च सरकारी पद पर नियुक्त हैं। वृद्ध वयस् में मन्मथनाथ ज्येष्ठपुत्र पूर्णेन्दु के पास ही रहते हैं।

''पूर्णेन्दुबाबू का घर था साधुओं के लिए धर्मशाला की तरह। विशेषतः मन्मथनाथ बाबू के गुरुभाई भक्तराज महाराज के लिए तो एकदम खुला द्वार था।

''स्वामी नित्यात्मानन्द महाराज भी प्रति वर्ष पंजाब भ्रमण के समय फगवाड़ा में मन्मथबाबू को मिल जाते। उसी घर में ही हमने उनका प्रथम दर्शन किया 1959 में।

''मन्मथनाथ गांगुलि महाशय बहुत वृद्ध हो गए थे जब मैंने उनको प्रथम देखा। सफेद से रंग के मनुष्य को देखकर ध्यान आया स्वामी अतुलानन्द महाराज का। ऐसे छोटे-से पक्के आम की तरह सिकुड़े से दिखे। वृद्ध अमरीकी संन्यासी। उनका स्थायी आसन था मसूरी पहाड़ पर। कड़ी शीत में प्रति वर्ष नीचे कनखल आ जाते। कनखल मिशन के guest house

(अतिथि गृह) में सबसे अच्छा कमरा उनके लिए निर्दिष्ट था। उनके आने पर उनके लिए खोल दिया जाता था।

"पंजाब के जालन्धर शहर में एवं उसके आस-पास के बहुत से लोग रामकृष्णपन्थी साधु के दर्शन करने जाते। ये सब ही मिशन से बहिर्भूत थे, किन्तु मठ के संग तब भी सम्पर्कयुक्त थे। जालन्धर श्मशान में रहते तारापद महाराज और भुवन महाराज। शहर में रहते हरिपद महाराज, वे प्रसिद्ध होमियोपैथ थे। मिशन के डॉक्टर के रूप में लाहौर में उनकी विशेष प्रतिष्ठा हो गई थी। ऐसी कि उनके कमरे में घुसते ही अंग्रेज civillian Chief Secretary (प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी) खड़े होकर सम्मान देते। जगबन्धु महाराज से सुना है, वह सम्मान उन्हें प्राप्य था चिकित्सक के रूप में, पिक्फोर्ड साहब स्वयं उनके द्वारा चिकित्सा करवाया करते।

"जगबन्धु महाराज कहते, ठाकुर उनके भीतर चिकित्सक रूप में घुस गए थे। मिशन के आरम्भ के प्रवीण साधुओं को यदि देखो तो पाएँगे कि उनके प्रत्येक के बीच ही ठाकुर ने एक न एक विशेष गुण दिया है।

"हरिपद महाराज के आश्रम में ही जगबन्धु महाराज के द्वितीय बार दर्शन लाभ किए। वे सरस्वती पूजा में आमन्त्रित होकर आए थे। हरिपद महाराज का तरुण वयस् से, जब वे बेलुड़ मठ के ब्रह्मचारी थे, संगीत में एकान्त अनुराग था। मठ के प्रथम प्रेज़िडेण्ट तब राखाल महाराज स्वामी ब्रह्मानन्द थे। उनको भी खूब शौक था गाने का, किन्तु उनका शरीर बहुत अस्वस्थ था।

"उन्होंने एकदिन दोपहर में ब्रह्मचारी हरिपद महाराज को अपने कमरे में पुकारकर बुलवाया। चुप-चाप, कोई न जाने। प्रकाश की मन की इच्छा। ज़रा गाना बजाना हो। 'किन्तु एक जोड़ा करताल जो चाहिए। जुगाड़ कर सकोगे?'

" 'जी कर सकूँगा। बड़े बाज़ार जाकर ले आऊँगा।' तब जाना माने था पैदल जाना।

" 'इस दोपहर की सख्त धूप में कर सकोगे?'

" 'जी आपका हुकम होने पर निश्चय ही कर सकूँगा। मैं अभी जा रहा हूँ।' प्रणाम करके ब्रह्मचारी हरिपद बाहर चले गए।

"लौटकर आते ही ब्रह्मचारी घुसे प्रेज़िडेण्ट महाराज के कमरे में। खूब सतर्क। और सतर्कता क्या? भजन कीर्त्तन, करताल के सहयोग से जो जम गया।

"प्रेज़िडेण्ट महाराज भूल गए अपनी वयस्। भूल गए अपना असुख, भूल गए असुख के लिए आरोपित विधि-नियम की बात।

"हरिपद ब्रह्मचारी का गान और राखाल महाराज का उद्दाम नृत्य!

"चारों ओर साधुओं की भीड़ जमा हो गई। किन्तु किसी की शक्ति नहीं भीतर घुसना।

"राखाल महाराज जब श्रान्त होकर क्षान्त हुए तब उनका मन आविष्ट था। करताल जोड़ा लेकर, झट करके दरवाज़ा खोलकर हरिपद महाराज तब ये छूटे, वो छूटे।

"उनको पकड़कर सेक्रेटरी महाराज के पास हाज़िर किया गया, और कैफियत तलब की गई। वे सिर्फ बोले, 'मुझसे क्यों कहते हैं? जाइए ना, वहाँ जाकर पूछिए। बड़ी अंगुल से प्रेज़िडेण्ट महाराज का कमरा निर्देश किया।' "

उस दिन सन्ध्या में रोज़ और हैरी ग्रेयर के घर पर यही सब बातों का ही विवरण हुआ। उन्होंने और ब्रह्मचारी जन ने निविष्ट चित्त से सब सुना। एक दम निर्वाक्!

उसके बाद हैरी ने कुछ बंगला गानों की टेप बजाकर सुनाई—वही जो पहले कहा था। किन्तु देखा एक के बाद एक ठाकुर के प्रिय गानों की श्रृंखला, वो सुनकर तो मुझे सिहरन होने लगी। क्या कभी सोचा था सुदूर अमरीका में बसे खालिस अमरीकियों का अतिथि बनकर ठाकुर के गान उनके मुख की भाषा में ही सुनूँगा? दूसरे का कण्ठस्वर अवश्य है। हरिदास के फ्लैट पर घूम कर देखा नाना हिन्दू देव देवियों की छवियाँ टांगी हुई थीं, स्वामी जी माने विवेकानन्द की, श्री माँ और श्रीरामकृष्ण तो हैं ही। किताब देख रहा हूँ, देखते ही हरिदास ने पहले ही कह दिया स्वामीजी की इच्छा नहीं है कि घर पर रामकृष्ण साहित्य के इलावा और कुछ रहे या हम पढ़ें।

"दैनिक समाचारपत्र?" पूछा।

हरिदास ने कहा, "वह तो आता ही है।"

"उससे आँख कैसे फिर हटे?" हँस कर बोलीं रमा।

तुम्हारी निष्ठा, भक्ति देखकर तुम को बार-बार प्रणाम करने की इच्छा होती है।

हरिदास बोल उठे, "कमरे में जो छवियाँ देख रहे हो, सब रमा ने अपने हाथ से अंकित की हैं।"

"हैं, क्या कहा?" एक-एक छवि आंकना जो एकखण्ड तपश्चर्या है। स्मरण-मनन की ऐसी तल्लीन गहरी एकाग्रता! समाप्ति पर आनन्द ही आनन्द।

एक, एक खण्ड-तपस्या, खण्ड-तपस्या। प्रणाम, प्रणाम।

जिस भवन में 1893 सन् में Parliament of Religions हुई थी और स्वामी विवेकानन्द वक्ता थे, हरिदास मुझे drive करके उसी घर पर ले आए।

हरिदास बोले, "हाय, वह भवन क्या अब उसी तरह है? वह अब मॉडर्न आर्ट का म्यूजियम (संग्रहालय) है।"

कहा, "यदि असुविधा न हो, तो भीतर एक बार देख आऊँ?"

मेरे कल्पना के चक्षु तो कोई बन्द कर नहीं सकेगा। कल्पना कर लूँगा, वक्ता की वेदी कहाँ थी या श्रोताओं के बैठने की गैलरी कहाँ थी।

सभा के प्रथम दिन वे केवल अनिमन्त्रित ही नहीं, अपरिचित भी थे। हिन्दुधर्म का कोई प्रतिनिधि उस धर्म महासम्मेलन में था नहीं। किसी ने उनको प्रतिनिधि बनाकर भेजा नहीं, कोई परिचय पत्र उनके पास था नहीं।

नहीं था, नहीं था, नहीं था। तब भी श्रीरामकृष्ण हैं किस लिए? श्रीरामकृष्ण जिसके सहाय हैं, वह क्या निःसहाय है? जो श्रीरामकृष्ण को सम्बल करके इस देश में आया है, वह क्या निःसम्बल है?

निःसहाय यदि हों तो स्वामी विवेकानन्द को उस दिन विशिष्ट वक्ताओं के संग समासीन कैसे देखा गया? डॉक्टर बरोज़ ने उनको परिचयपत्र दिया था यह कहकर, 'स्वामी विवेकानन्द को introduce (परिचय सम्पन्न) करने की चेष्टा करना माने लैम्प पकड़कर सूर्य को दिखाना।' सूर्य सत्य ही जो स्वयंप्रभ है।

इस महती सभा में विश्व के प्राचीनतम धर्म का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता उनमें निःसंशय वर्तमान है।

सभा के अन्त की ओर पाँच मिनट का समय उनके लिए निर्दिष्ट हुआ। किन्तु वक्तृता देते उठते ही उन्होंने जो श्रोतृमण्डली को सम्बोधन किया sisters and brothers कहके, श्रोता सुनकर अवाक्। प्रथा के अनुसार इस तरुण ने तो 'ladies and gentlemen' कहकर सम्बोधन नहीं किया?

समवेत श्रोतामण्डली एकसंग उठ खड़ी हुई। वे खड़े होकर हाथ से ताली बजाने लगे। Standing ovation (उत्थित साधुवाद) जिस विदेशी युवक ने पाया, उसकी अपनी छोटी-सी वक्तृता के शेष करते ही विस्मित होकर प्रवीण लोग अपने आसन पर आविष्ट हो रहे। श्रोताओं के बीच एक वयःप्रवीणा बाद में उस मुहूर्त में क्या घटा था, उसका वर्णन देते हुई बोलीं, "श्रोताओं के बीच जो तरुणियाँ थी, उन नवयुवतियों ने चेयर टपका-टपका कर धावा कर दिया वेदी की ओर, उस तरुण वक्ता की ओर। मैं बूढ़ी मानुष स्थाणु होकर बैठे हुए ही अपने-आप को बोली, 'Young man, if you can withstand this onslaught, verily you are a God on earth!' "

सारा जगत् जानता है, केवल उसी आक्रमण में ही क्यों, परवर्त्ती काल में उस प्रकार के बहु आक्रमणों का भी प्रतिरोध करके वे जयी हुए थे।

किन्तु सर्वप्रथम एटमबम की तरह फट पड़े थे विश्ववासियों के सामने उस महाधर्म सम्मेलन में ही।

वे देश लौट आने पर गुरु भाइयों को बोले थे, "उनको क्या मैं कुछ बोला था? मेरा तो भय से गला सूखकर काठ हो गया था, बार-बार ठाकुर को स्मरण कर रहा था। ठाकुर ने अवश्य मुझे आश्वासन दिया, 'भय क्या? मैं तो हूँ।' वही हुआ रे, वही हुआ! वे मेरे कण्ठ में बैठकर बातें बोले। चुन-चुनकर कई एक बातें सोचकर गया था, किन्तु कार्यकाल में सब गुल हो गया। तब ठाकुर ही मेरे कण्ठ में बैठकर बातें बोले।"

अमरीका में 'Poetry' नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका छपती है। जिसमें सिर्फ़ कविताएँ रहती हैं, गल्प उपन्यासादि नहीं। कविताप्रेमी के लिए उस पत्रिका की तब एकजन महिला कवयित्री सम्पादक थीं। उन्होंने उत्तरकाल में आत्मजीवनी लिखी। उसमें शिकागो के धर्म महासम्मेलन में जाने की बात का इस प्रकार उल्लेख किया है—मैं वहाँ उपस्थित थी। वक्ताओं के बीच सर्वश्रेष्ठ निःसंदेह थे एकजन भारतीय युवक विवे कानाडा (विवेकानन्द)। Vive Canada was decidedly the prince among the

speakers. सम्मेलन शेष होने के बाद भी शिकागो और शिकागो के उपकण्ठ में वे वक्तृता देते हुए घूमने लगे, संवाद समाचारपत्र में पढ़ा था किन्तु तब भी मैंने उनकी कोई भी वक्तृता सुनने जाने की चेष्टा नहीं की। कारण, मैं विश्वास करती हूँ कि चरम आनन्द मनुष्य अपने जीवन में एक बार मात्र ही उपलब्ध कर सकता है। I did not make any effort to attend any of his lectures for the second time, for I believe one can experience the highest ecstasy only once in one's life time— किन्तु यह थी एक विख्यात कवयित्री और विशिष्ट बुद्धिजीवी की प्रतिक्रिया।

एक कण धूलि की प्रत्याशा में उसी ऑर्ट म्यूजियम की ज़मीन पर हाथ फेरकर उसी हाथ को लेकर माथे से छुआ।

विवेकानन्द ने जिस रेलवे स्टेशन के यॉर्ड में एक परित्यक्त चाय के पैकिंग बॉक्स के भीतर घुसकर एक रात्रि में हिम के हाथों से प्राणरक्षा की थी, वहाँ पर उसके बाद जाना हुआ।

उस समय का तो कुछ नहीं था। केवल कल्पना से सञ्जीवित कर लिया। कितने निर्बान्धव हो कर एक खुले आकाश के नीचे जहाँ इकट्ठे कर रखे हुए चाय के पैकिंग बॉक्स थे, वहाँ एक के भीतर घुस कर पडे रहे इस आशा में कि हिमशैत्य के हाथ से रात्रि में जैसे रक्षा पाएँ। हाय!

सोचते हुए आँखो में जल आ गया।

इस देश में लोगों की दृष्टि में या कानून की दृष्टि में भिक्षा माँगना या देना ग्राह्य रीति नहीं है। अथच भारत में संन्यासी का जीवन धारण भिक्षान्न से है। उस अवस्था में कैसी मारक विपद् में वे पड़ गए थे। कहाँ से रात्रिवास के लिये सिर के ऊपर एक् टुकड़ा छत मिली और मिली खाने के लिए ज़रा सी पाव-रोटी। हारे उद्देश्य से कब तक चलेँ? कहाँ चलेँ?

श्रान्त होकर वे फुटपाथ के ऊपर ही बैठ गए—पाँव जो और नहीं चल रहे। फुटपाथ के उल्टी ओर था हेल दम्पति का घर। उसे लेकर श्रीरामकृष्ण ने लीला की। वृद्धा के मन में हुआ उनके घर के सामने एक विदेशी क्षुत्पिपासा से कातर हुए बैठे हैं, उनको लेकर आना होगा। वे क्रिश्चियन चैरिटी द्वारा उद्बुद्ध हो गईं। झटपट बाहर आ गईं। देखा गया, परिश्रान्त विवेकानन्द को समादर से अपने घर ले आईं।

मिसेज हेल उस दिन से उनकी आश्रयदात्री हो गईं। विवेकानन्द उनको कहते, माँ। आजीवन वह सम्पर्क कायम था। उनकी लड़कियों को विवेकानन्द कहते भगिनी, देखते भी बहन की तरह।

स्नेह अवश्य निम्नगामी है, किन्तु वह होने पर भी जो चार दिन शिकागो में था उस समय यह अधम जो स्वामी विश्वानन्दजी की कितनी स्नेह-कृपा पाकर धन्य हुआ, वह और कह नहीं सकता। वह जो इस अधम के निजगुण वा गुण के अभाव से सम्भव नहीं हुआ, वह हुआ इस अधम के जगबन्धु महाराज के आश्रित होने के कारण, वह सम्पूर्णतः जानता हूँ।

एक दिन रात साढ़े आठ बुलाया। पाँच मिनट पहले पहुँच गया। हठात् वेदान्त सोसाइटी के ऊपर के तल की खिड़की खुल गई। उदात्तकण्ठ से आवाज़ आई, ''कौन?'' प्रश्न अंगेज़ी में था, किन्तु बंगला में ही उत्तर दिया, ''जी, मैं'' ।

''हा-हा-हा, तुम पाँच मिनट पहले पहुँचे हो, सोचकर पायचारी करता घूम रहा था। चले आओ, मैंने दरवाज़ा खोल दिया है।'' ऊपर तल से बटन दबा दिया और दरवाज़ा खुल गया।

जाते मात्र ही बोले, ''हरिदास एक घण्टा बाद आएगा, तुम्हें ले जाकर Y.M.C.A. पहुँचा देगा। मैं बोला, ''OK'' ।

हमारे हाथ में अब एक घण्टे का समय है।

पूजनीय जगबन्धु महाराज के रहन-सहन, जीवनचर्या के सम्बन्ध में नाना खोज-खबर, खोल खोलकर जान लीं —

ऋषिकेश के तुलसी मठ के जीवन का भिक्षान्न से जीवनयापन का कृच्छ्रसाधन, अनेक क्षण तक गंगास्नान करना, गंगा में शरीर डुबोकर ग्रीष्मापनोदन करना। सकाल-विकाल में संग लेकर रामकृष्णपन्थी साधुओं ने ऋषिकेश में जो पृथक् रूप से कालोनी की तरह बनाई है, वह देख आना। कहते– देखिए, ये सब साधु, कोई वैसा तरुण नहीं, ये मिशन की छत्रछाया परित्याग करके चले आए हैं, एकान्त में कुटिया बाँध कर तपस्या कर रहे हैं— एकमात्र उद्देश्य जीवन-त्याग के पूर्व ईश्वर-दर्शन करेंगे ही। अब मन में एकमात्र चिन्तन है, ईश्वर-दर्शन। और सब कर्त्तव्य शेष।

सन्ध्या के बाद जाह्नवी तट पर आकर बैठ जाते, पीछे-पीछे हम भी आते। आकाश के तारे पहचनवाते, दूर नदी के दूसरे तट पर किस पहाड़ की

चोटी को पाण्डव अतिक्रमण कर रहे हैं, जैसी कि जनश्रुति है, वह दिखलाते।

उसके बाद स्वरचित एक संस्कृत रामकृष्ण स्तोत्र आवृत्ति किया। कड़ी शीत में पूजनीय जगबन्धु महाराज पंजाब, यू.पी. में घूमते। अनेक दिन की पहचान न होने से किसी के घर पर बहुत दिन नहीं रहते। बहुत दिन माने एक महीना।

एक मास रहते सरदार हरबंस सिंह, और निर्मलकुमार बैनर्जी के घर और पंजाब के होशियारपुर के एडवोकेट लाला दुर्गादास के घर।

बीच में दो, चार, छः, सात दिन करके अथवा एक-दो हफ्ते करके रहते चण्डीगढ़ के एन. सी मेहता के पास, अमृतसर के जावा साहब के पास।

अनेक ही चाहते कि महाराज उनके पास दया करके कई दिन रहें। उनके पास पैसा था, सामर्थ्य था, स्थान संकुल होता, किन्तु उनको राज़ी कर नहीं पाते। जैसे पंजाब government (सरकार) के chief secretary (चीफ सेक्रेटरी) ई. एम. संगतराई, I.C.S. (आई. सी. एस.)। उन्होंने अपनी गाड़ी भेजी थी महाराज को ऋषिकेश से चण्डीगढ़ लाते समय, किन्तु महाराज उनके घर कभी रहे नहीं।

अथच एन. सी. मेहता पंजाब के Hydel (हाइडेल) के चीफ इन्जीनियर (Chief Engineer) थे, वे भी चण्डीगढ़ में रहते। उनके घर में पन्द्रह दिन रहते महाराज। उनको दास-दासियों का अभाव था नहीं। किन्तु स्वामी जी की सेवा-शुश्रूषा का भार था उनकी स्त्री के अपने हाथ में। स्वामी जी उस महिला को कहते माई। माँ की तरह उनकी सेवा का भार उनके ऊपर था। सेवा द्वारा ही उन्होंने सिद्धि लाभ किया था।

अमृतसर के म्यूनिसिपल चीफ़ इंजीनियर थे विलायत से लौटे हुए जावा साहब। इन्होंने साधु-सेवा करना उत्तराधिकार सूत्र में पाई थी। इनके पिता खूब साधु-सेवा करते थे। उनकी ज़मीन पर कुटिया बँधी रहती, साधुओं के आने के लिए, रहने के लिए।

इस प्रकार साधुओं के लिए पृथक् बन्दोबस्त अलग कमरा देखा सरदार हरबंस सिंह की ज़मीन पर। पंजाब में वे एक सौ बीघा उपजाऊ ज़मीन के मालिक हैं। सब फसलें ही प्रचुर होती हैं। प्रतिदिन कितने मन तो दूध ही

दोहा जाता है। किन्तु घर की वधुओं के प्रति कड़ा आदेश है, जिसकी जितनी सन्तान है वह उसी समझ से, उसी माप से दूध पाएगी, उससे अधिक नहीं, कर्मचारी अधिक चाहने पर देंगे ही नहीं।

साधुओं के लिए भी दूध की मात्रा निश्चित है। चावल, दाल, आटा, घी की तरह दूध की भी प्रतिदिन प्रति साधु के लिए मात्रा निश्चित है।

शेष की ओर, वार्धक्यवशतः इस शहर, उस नगर घूम-घूम कर भक्तों की सेवा ग्रहण करना सम्भव नहीं होता था, तब भी जो सब भक्त उनकी गिनती में रहते, उनके बीच अग्रणी थे निर्मल कुमार बैनर्जी युक्तप्रदेश के Electricity Board के Chief Engineer, बाद में बोर्ड के मेम्बर; युक्त प्रदेश के Postgraduate Teaching [College] के प्रिंसिपल डॉक्टर अभयचन्द्र भट्टाचार्य, लखनऊ के प्रिंसिपल हाराणचन्द्र भट्टाचार्य, लखनऊ की सुगायिका कविता अधिकारी, छवि चौधुरी, ललित चन्द्र खान, रेलवे के डॉक्टर सत्येन्द्र मजुमदार प्रमुख।

छवि को हम कहते स्वामी जी की गोद की लड़की। गोद की लड़की की तरह ही लाड करती छवि स्वामीजी से। उसके पति की प्रमोशन में ज़रा देरी थी, उसे लेकर उसके मन में बहुत दुःख, अशान्ति थी। इसके अपने मामा थे I.C.S. अफसर। उनका अपना शरीर का रंग ज़रा साँवला था, इसलिए उसका विवाह जिसके साथ हुआ, वे तब खूब उच्चपद पर उठे नहीं, इसलिए मन में ज़रा क्षोभ था। छवि केवल बड़े घर की लड़की नहीं थी, देखने में भी सुन्दर थीं। छवि के पास भी रहे हैं [महाराज़]।

इसी तरह गप्प लगाने के बहाने से जगबन्धु महाराज के शिष्य-शिष्याओं की बात सुनी। कथा-प्रसंग में और भी कहा, ''याद आया, निर्मल कुमार बैनर्जी के घर पर गुरुदेव एकबार बोले थे: शास्त्र में वे नहीं हैं। वेद-वेदान्त में उनको पाया नहीं जाता। शास्त्र-वास्त्र, यही भागवतादि पाठ, यह सब ही अपरा विद्या है। हम जो कहते हैं, यह सब भी अपरा विद्या है। बाहर के घर की बात है यह सब। घर में बाहरी-घर, भीतरी-घर होता है ना? यह सब है बाहरी-घर। तब भी कोई-कोई बाहरी-घर से भी भीतरी-घर में घुस पाता है, घर वाले के संग विशेष परिचय होने पर। फिर कोई-कोई एकदम ही भीतरी-घर में रहता है। जैसे ठाकुर। भीतरी घर माने, सर्वदा उनके संग युक्त होकर रहना। वेद भी अपरा विद्या है। उससे यदि

उनको नहीं पाया जाता, तो और दो पत्ते पढ़ कर इतना अहंकार क्यों? परा विद्या हुई जिससे 'तदक्षरमधिगम्यते' (जिससे उस अक्षर को जाना जाता है– मुण्डकोपनिषत् १-१-५)। ज्ञान-भक्ति। तभी कहता हूँ— कुछ चाहोगे नहीं। केवल उनके चरणों में ज़रा भक्तिलाभ जैसे हो जाए।"

आजकल हरिसभा की तरह धर्मकथा और learned lecture (पाण्डित्य पूर्ण भाषण) से लोग खुश नहीं हैं। चाहते हैं अपने जीवन की बात— जगबन्धु महाराज के इसी मत में सम्मति जताकर बोले, "हाँ, अमरीका, यूरोप के लोग भी वही चाहते हैं।" इन सब बातों के बाद पूजनीय स्वामी विश्वानन्द जी ने मुझसे जिज्ञासा करके खबर ली कि शिकागो के बाद कहाँ जाऊँगा। सान् फ्रान्सिस्को सुनकर बोले, "वहाँ सेकेण्ड-इन-कमाण्ड हुए हैं, स्वामी श्रद्धानन्द। उनको मेरा नाम लेकर कहो कि मैंने ही तुम्हें भेजा है, समझे? यह बात कहना। तब वे ही तुम्हें गाड़ी करके बर्कले मठ में ले जाएँगे और जो-जो दिखाने का है, दिखा देंगे।

"उसके बाद वहाँ से कहाँ जाओगे? हॉलिवुड? अच्छा है। अमरीका में हमारी वेदान्त सोसाइटियों के बीच सब से बड़ा सेन्टर है हॉलिवुड। वहाँ स्वामी प्रभवानन्द हैं। वहाँ तो तुम कई दिन रहोगे उनके संग, कह रहे हो। खूब अच्छा होगा।"

"वहाँ से दक्षिण की एक स्टेट, टेक्सस् की एल पासो होकर लौटना है। महाराज, लौटने के रास्ते में किन्तु फिर शिकागो आना होगा।"

"हाँ?"

"जी हाँ? तब शिकागो एयरपोर्ट से ही प्लेन बदल कर और एक प्लेन पर चढ़ कर सिराक्यूज़ पहुँचना है।"

"सुनो, तुम किन्तु लौटने के पथ पर शिकागो एयरपोर्ट से मुझे फोन करो। भूल ना जाना। मैं wait (प्रतीक्षा) करूँगा तुम्हारे फोन के लिए।"

"जी, अच्छा।"

"भूलना नहीं।"

"जी नहीं, महाराज।"

सान् फ्रान्सिस्को एयरपोर्ट पर एकजन भक्त गाड़ी लेकर अपेक्षा कर रहे थे। उन्होंने हमें वहाँ के YMCA में पहुँचा दिया। कहा, "कमरे की booking (आरक्षण) चैक कर रहा हूँ। ठीक है, कोई असुविधा नहीं है।"

स्वामी श्रद्धानन्दजी को शिकागो के महाराज की बात बताई। उनके ही एकजन अमरीकन भक्त ड्राइव करके ले गए— Bay (खाड़ी) के दूसरे तीर पर, बर्कले मठ में। मठ बर्कले विश्वविद्यालय की एकदम गोद में है। वस्तुतः उसका स्थान काफी नहीं है, कहकर विश्वविद्यालय ने मुकद्दमा करके मठ को उठा देने की चेष्टा की थी। किन्तु अमरीका देश है ना, वहाँ के विचार विभाग ने विश्वविद्यालय की बात सुनी नहीं। कहा, वह होगा वहीं, वे उठेंगे नहीं। तुम अपने लिए अन्य जगह खोज लो। विश्वविद्यालय किन्तु विश्वविख्यात है। अध्ययनरत अध्यापकों में आठ-नौ लोग ही Nobel Laureate (नोबेल पुरस्कार विजेता) हैं।

इस प्रकार के मननशीलता के वातावरण में वेदान्त सोसाइटी के अध्यक्ष थे स्वामी शान्तानन्द। जैसा नाम वैसे ही शान्त, ठण्डे मिजाज़ के साधु। एक व्यापार में जडे बैठे हैं। एकजन महिला भक्त के संग बात कर रहे हैं। महिला की दोनों आँखें अश्रु-सजल। इनके संग हमारा परिचय करवा दिया। कहा, ''इनको कहा था, कर्म न करने पर उपाय नहीं, सारा विश्व कर्मफल से चल रहा है। ईश्वर के भय से सूर्य उठकर अस्त हो जाता है, भय से अग्नि दहन करती है, उत्ताप देती है। उसके ही भय से पर्जन्य देता है, वायु और मृत्यु अपना-अपना कर्तव्य करे जा रहे हैं।

''काज किए बिना क्या उपाय है?''

साधु की बात सुनते ही आँखों में जल भर लाने वाली ऐसी बंगाली भक्त ही फिर कौन है?

मन में हुआ, स्वामी शान्तानन्दजी वही विरल साधुओं में से एकजन है जिन्होंने स्वयं शान्ति पाई है— 'वो ही है जो रामरस चाखे'। तभी उनकी बात में भी उसी शान्ति की छाया पाई जाती है।

घूम-घूम कर बर्कले आश्रम देखना हुआ।

सान् फ्रान्सिस्को मन्दिर तब नया बना था। पुराने मन्दिर में स्थान काफ़ी नहीं था, इस मन्दिर में देखा, पूजा वेदी पर पाँच जन पास-पास पूजित हो रहे हैं। रामकृष्ण trinity अर्थात् श्रीरामकृष्ण, श्री माँ और स्वामी विवेकानन्द तो हैं ही, इनको छोड़ कर हैं बुद्धदेव और यीशु क्राइस्ट। यह अभिज्ञता मेरे लिए नई थी।

और कहीं भी इस प्रकार हुआ है अद्यावधि सुना नहीं। दूसरे दिन प्रातः हॉलिवुड चला जाऊँगा इसलिए रात्रिवेला में स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अपने संग डिनर (रात्रि-भोजन) का निमन्त्रण दिया। मठाध्यक्ष स्वामी अशोकानन्द के संग आलाप-परिचय हुआ।

अमरीका में रामकृष्ण मिशन के जितने साधु हैं, उन सब के बीच पण्डिताग्रगण्य हैं स्वामी अशोकानन्द। जिस पाण्डित्य की खूँटी से बाँध कर खेलते हुए पृथ्वी पर गिरा डाली एक प्रकाण्ड मछली। कैलिफ़ोर्निया में बीवरली हिल्स में सुन्दर घर बनाकर रहते हैं प्रख्यात लेखक, विश्वव्यापी जिनका है नाम– अल्डस् हक्सले। वे एक वर्ष लगभग अशोकानन्दजी के प्रति सप्ताह के सरमन को सुनते। अवश्य स्वनाम ये नहीं, बेनाम। पृथ्वी पर खींच लेने के बाद मछली ने प्रकट किया अपना परिचय।

अन्त में अवश्य हक्सले ने दीक्षा ली हॉलिवुड के मठ के स्वामी प्रभवानन्द से। प्रभवानन्दजी ने स्वयं कही हमें यह बात। उनका ध्येय अवश्य श्री रामकृष्ण नहीं था, यीशु भी नहीं था, शून्य था।

और भी नामी बुद्धिजीवी निश्चय ही अशोकानन्दजी के भक्तों के बीच हैं। तब भी हमारे जानने वालों के बीच हैं मेरी लुई बर्क, अशोकानन्दजी ने नाम दिया है गार्गी। अब तो अमरीका प्रव्राजिकागणों में अग्रगण्य हैं। उनके लिखित गवेषणात्मक दो वाल्यूम में स्वामी विवेकानन्द के अमरीका प्रवास की स्वल्पज्ञात घटनाएँ हैं। लेखन हुआ है पुराने संवादपत्रों को ढूँढ-ढूँढ कर। अशेष परिश्रम की फसल है।

हमने गार्गी का साक्षात्कार किया देश लौटने पर। तब वे बेलुड में रह रही थीं और अपने गुरु अशोकानन्दजी के सम्बन्ध में एक जीवनीग्रन्थ की रचना में व्यापृत थी।

केवल क्या गार्गी, हक्सले, ईशरवुड ने ही, अपितु रोमाँ रोलाँ, मैक्समूलर—जगत् के कितने ही मनीषियों ने श्रीरामकृष्णदेव के छत्रतले आश्रय लिया है। प्रमाण दिया है कि वे [श्रीरामकृष्णदेव] क्या थे। वही सोचता हूँ— कहाँ यूरोप-अमरीका, और कहाँ कामारपुकुर, दक्षिणेश्वर, कहाँ ग्रामीण, प्रायः निरक्षर ब्राह्मण, और कहाँ उनके नाम से जगत् भर में जुड़ा धर्मान्दोलन! भगवान् की शक्ति जब काज करती है, तब सब अन्य प्रकार का होता है। और जगत् के मनीषीगण किस भाषा में उनका

मूल्यांकन कर गए हैं। रोमाँ रोलाँ ने कहा है— दिव्यात्मा रामकृष्ण ने अपना समग्र जीवन जगन्माता के चरणतले अतिवाहित किया है। उनकी साधना थी जटिल दुर्गम वेदनावह— जिस साधना के अन्त में विश्वानन्द की एक प्रशान्त पूर्णता के मध्य उनका जीवन अतिवाहित हुआ। ये भारतीय राजहंस परमहंस चक्रवात से विक्षुब्ध दिनों की यवनिका को पार करके चिरशाश्वत के स्वच्छ सरोवर में अपने सुविशाल शुभपक्षों का विस्तार कर विश्राम कर रहे हैं। उसी प्रशान्त वायुमण्डल के स्वच्छ विस्तार के ऊपर उनका मृदु हास्य और गूढ़ भाष्य चमकित हो रहा है। मैक्समूलर ने कहा है, रामकृष्ण थे धर्म के इतिहास में एक श्रेष्ठ समन्वयाचार्य।

हॉलिवुड रेलस्टेशन पर अपेक्षा कर रहे थे मिस्टर और मिसेज विलियम टेलर। मिसेज टेलर वेदान्त सोसाइटी की सदस्या हैं। आश्रम की भक्त हैं।

अमरीकी भक्तों के घर पर अपना ठाकुर-घर प्रथम देखा इन्हीं के घर पर। बंगाली हिन्दु के ठाकुर-घर में जो-जो रहता है, सब ही है, कोशाकुशि तक। आश्चर्यचकित हो गया।

हॉलिवुड मठ की भक्त संख्या तो सर्वाधिक है; तब थी तीन सौ। इनमें अनेक के संग आलाप, परिचय हुआ एकदिन जब वे चाय पर आए। आश्चर्य हुआ। बाहर से सब ही देखने में एक जैसे, जैसे सब गुजिया के भीतर की पूर। किन्तु किसी के हृदय में उड़द की दाल की भराई, किसी में नारियल का बूर और किसी में पनीर के बने सन्देश की पीठी।

स्वामी विवेकानन्द शिकागो के एक छोटे से पार्क में जाकर बैठते थे सुबह की धूप सेकने के लिए। एकदिन एक युवती उनके पास आकर नितान्त कुण्ठित होकर बोली, "यदि आप बुरा न मानें तो मेरी शिशु कन्या को आपके पास रख कर मैं ज़रा बाज़ार से लौट आऊँ क्या? बहुत देर नहीं करूँगी। जाऊँगी और आऊँगी।" विवेकानन्द तो अवाक्। कहा, "निश्चय, निश्चय। यह तो बहुत खुशी की बात है। आप जाइए।"

महिला के चले जाते ही विवेकानन्द ने सोचा, "यह श्वेतकाय महिला विदेशी के पास बच्चा रख गई है, यह आश्चर्य जनक घटना ही तो है। विदेशी, और फिर अद्‌भुत पोशाक पहने हुए, न महिला ने भय किया, न बच्चे को भय हुआ।"

अन्ततोगत्वा, ज़रा बाद ही महिला आईं एवं यथारीति प्रचुर धन्यवाद देकर बच्चा ले गईं। दूसरे दिन भी फिर आईं। खूब कुण्ठित होकर बच्चा रखके बाज़ार गईं। विवेकानन्द ने आनन्द से बच्चे को रख लिया।

उसके अगले दिन से महिला की कुण्ठा का भाव कम होने लगा, यह जैसे निश्चित हो गया कि विवेकानन्द शिशुओं के baby sitter (बेबी सिट्टर) का काज करेंगे, इसमें उसकी माँ को लज्जा, कुण्ठा कुछ नहीं है।

विवेकान्द एक समय शिकागो छोड़कर चले गए। शिशु भी धीरे-धीरे बड़ी होने लगी, किन्तु घटना वहीं थम नहीं गई। अनेक-अनेक बार इस घटना की बात को अपनी माँ से सुना था, सुनते-सुनते मन में गुंथ गई।

जब उनकी अठारह-उन्नीस वर्ष की वयस् थी तब उसकी माँ ने एकदिन अत्यन्त उत्तेजित होकर एक मैगज़ीन का पन्ना लाकर दिखाया। "बेटा, यही वह भारतीय साधु है जिसके पास तुम्हें बचपन में छोड़कर मैं बाज़ार जाती थी।"

"देखूँ, देखूँ," कूद पड़ी छवि के ऊपर वह तरुणी। और नए तरह का भाव शुरु हुआ। जिसकी परिसमाप्ति घटी उसके हॉलिवुड वेदान्त सोसाइटी में योगदान करने पर।"

यह हुआ अमोघ अमृत स्पर्श।

1962 सन् में भी हॉलिवुड जाकर हमें प्रत्यक्ष करने का सुयोग मिला—धनाढ्य अमरीकी भोगविलास के एक केन्द्रबिन्दु में अवस्थित होकर भी यह आश्रम एवं इसके संग युक्त कई सेन्टर अतुलनीय निष्ठा से कार्य किए जा रहे हैं।

ऐसे कई सुयोग आए जब कई भक्तों ने अपने-आप हमें अपने घर पर बुलाया। लगभग चौदह दिन हॉलिवुड आश्रम में साधुओं के संग था। उनके बीच दो सप्ताहों के दो सप्ताहान्तक पड़ेंगे। इसके बीच कार्य में पागल अमरीकन समय निकालकर हमें बुलाते। यह समस्त सहज व्यापार नहीं है। यह असम्भव सम्भव हुआ जिस किसी क्षेत्र में, उसके लिए सम्पूर्ण कृतित्व है हॉलिवुड के मठ के बड़े और छोटे स्वामीजी का, स्वामी प्रभवानन्द और स्वामी वन्दनानन्द का, यह इनकी कृपा से हुआ।

क्राइस्ट के जन्मदिन पर निमन्त्रण हुआ एक भक्त के घर पर। उनके ठाकुर-घर में अनुष्ठान हुआ करता—पहले chanting (स्तुति-गान), सब ही

खड़े होकर जय श्रीरामकृष्ण, जय श्रीरामकृष्ण कहकर एक संग उनका जयगान करते पन्द्रह मिनट।

उसके बाद आरम्भ हुआ ध्यान। आधा घण्टा।

ध्यान के अन्त में सूची अनुयायी रामकृष्ण के भजन।

सोचकर देखिए, हारमोनियम बजाकर बंगला गान गा रहे थे एकजन विशुद्ध अमरीकन भक्त और श्रोताओं के बीच में थे एकजन विशुद्ध बंगाली अर्थात् हम और एकजन स्वामी वन्दनानन्द। यदि वे जन्म से कर्णाटक-वासी हैं किन्तु दीर्घ समय से बेलुड़ मठ में रहने के फल से विलक्षण बंगला जानते हैं। गृह-कर्त्ता को दुविधा-संकोच नहीं, सहज ही बंगला गान गए चले जा रहे हैं। सोचते ही सिहरन होती है!

दो-एक गान में एक-आध शब्द में ज़रा खटका लगा, उसके लिए स्वामी वन्दनानन्द को ही दायी सोचा। वे सुधार क्यों नहीं देते? जैसे 'विरल' शब्द को 'बिडाल' रूप से उच्चारण ऐसा ही गर्हित है कि इस ओर गायक की दृष्टि आकर्षित न करना नितान्त अनुचित है, पाप का कार्य होगा। दृष्टि आकर्षित करते-करते ही वह तीक्ष्णधी भक्त गायक बोले, "आश्चर्य नहीं कि स्वामीजी मेरे इस गान को सुनते ही गुस्सा हो जाते हैं— No wonder the Swami gets angry every time I sing this song."

वन्दनानन्दजी ने आत्मपक्ष समर्थन में कहा, "उनके घर पर इस तरह अनुष्ठान यह प्रथम ही हुआ है, मैं भी पहली बार आया हूँ। मैंने उनको इतिपूर्व गान गाते नहीं सुना।"

अभिभूत हो जाने वाला व्यापार! भक्त ने ठाकुर के आसन पर चन्दनकाठ की दशावतार मूर्त्ति सजाई हुई है। निश्चय ही बंगलौर से यह संगृहीत है। उससे अधिक चमकप्रद यह हुआ कि उन्होंने प्रत्येक अवतार की पौराणिक कथासूत्र झटपट कह दी।

बाद में प्रभवानन्दजी को जब कहा, तो वे बोले, "हाँ, हिन्दु पुराण की जो सब कथा मैं भी नहीं जानता, वे वह सब जानते हैं। खूब मेधावी हैं। कोई चाकरी-वाकरी नहीं करते, अपना ही वैज्ञानिक यन्त्रावली तैयार करने का कारखाना है, वही चलाते हैं।"

और एक भक्त लड़की की बात सुनकर भी मैं चमत्कृत हो गया। एकजन करोड़पति की लड़की है। स्वामी प्रभवानन्दजी ने नाम दिया है

'मंगला'। उसने आश्रम में ब्रह्मचारिणी के रूप में योग दिया है और लौटना नहीं चाहती। लड़की ने जब अपने मन में संकल्प में स्थिर किया, तब उसके पिता ने प्रभवानन्दजी के संग मिलना चाहा।

आकर क्या कहा? धमकाया, "आपके विरुद्ध पुलिस केस करूँगा। मेरी लड़की को फुसला लाए हैं। जबर्दस्ती करके रोक रखा है।"

"मैंने कहा, 'मैं तो उसको फुसला कर नहीं लाया। जबर्दस्ती करके रोक नहीं रखा। पच्चीस छब्बीस वर्ष उसकी वयस् हो गई है। वह अपनी इच्छा से आई है, अपनी इच्छा से रह रही है। जिस किसी भी मुहूर्त में वह चली जा सकती है। तुम उसको साथ लेकर जाओ ना। आज ही, इसी क्षण।' "

"मेरी लड़की ही यहाँ से जाना नहीं चाहती। यही तो समस्या है। अच्छा, एक बात पूछता हूँ, 'तुम उसे शेष वयस् का क्या सम्बल दोगे? क्या दे पाओगे?' "

"संसार में लौट जाने पर भी तुम्हारी समस्त सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी हो सकती है, यही तो कहोगे? हाय, उस सम्पत्ति का क्या मूल्य है? अभी है, अभी नहीं। आज है, कल नहीं हो सकती। किन्तु यहाँ से जो पाएगी तुम्हारी लड़की, वह इस जन्म में ही केवल नहीं, जन्मान्तर में भी सहायक होगा। तुम्हारी सम्पत्ति का जैसे विनष्ट होने का भय है इस अमृतत्व के विनष्ट होने का भय नहीं है।"

मंगला ब्रह्मचारिणी की जननी भी ठाकुर की भक्त है, वेदान्त सोसाइटी में नियमित यातायात करती हैं। उनका ही एक घर है एकदम समुद्र के ऊपर, समुद्रतट पर, काँच से बना। घर में जहाँ चाहो, बैठ कर चारों ओर प्रशान्त महासागर की लहरों के खेल का उपभोग किया जाता है। अस्वस्थ साधुओं के विश्राम का निवास हो गया है अब। सारे अमरीका के रामकृष्ण-साधु आकर समवेत होते हैं।

लड़की और माँ के संग परिचय हुआ। उसी घर में ही उनका अपना shrine अर्थात् ठाकुर-घर है। सन्ध्या के समय वहाँ जाकर ठाकुर के सम्मुख हुआ, एकाकी। एकान्त।

कैलिफोर्निया में हॉलिवुड मठ के तत्त्वावधान में जो कई केन्द्र हैं, उनमें एक है श्रीसारदा आश्रम पैसाडीना (Pasadena) में। मंगला के साथ बहुत-सी प्रवाजिका ब्रह्मचारिणियाँ निवास करती हैं। प्रति रविवार सुबह यहाँ

सरमन होती हैं। क्रम से हॉलिवुड से एक रविवार प्रभवानन्द जी जाते हैं, अगले रविवार कल्पनानन्दजी।

इस आश्रम में रविवार सुबह का सरमन सुनने का सौभाग्य हुआ नहीं। तब भी सन्ध्या वेला में पूजा के समय प्रभवानन्दजी पूजावेदी पर मुझे साथ ले गए एवं बोले, बैठो। मैं उनके पीछे बैठा। उनकी कृपा से अनेक निदर्शन पाकर धन्य हुआ।

दोपहर में खाने बैठने पर प्रभवानन्दजी की कृपा, करुणा का परिचय पाया। पास बैठकर अपनी पत्तल से उठा-उठा कर दिया। खाकर उठने पर आश्रम परिवेश में आराम से मीठी धूप में बातें हुईं। एक मुठ्ठी भर खिलते हुए लाल ताज़े जवापुष्प इतने मनोहर लगे कि कह नहीं सकता। कितना कष्ट करके फलों के पेड़ जो लगाए हैं, प्रभवानन्दजी वही बात बोले। यहाँ का शुल्कविभाग भीषण कड़ाई करता है। फूलों की लहर तक आने नहीं देता।

यह जैसे सिर्फ लड़कियों के लिए है, वैसे ही सिर्फ लड़कों के लिए हुआ ट्रैबूको (Trabuco) ब्रह्मचर्याश्रम। वहाँ था चार दिन। प्राणवन्त अमरीकी लड़के थे—जहाँ आश्रम का सारा काम, खाना पकाना, ठाकुर-घर परिष्कार करना, पूजापाठ, जपध्यान भोग आरती लेकर सारा दिन काटते देखकर अवाक् हो गया और अच्छा भी लगा।

पाठ हॉलिवुड मठ में भी होता है। प्रति मंगलवार सन्ध्या में विख्यात लेखक क्रिस्टोफर ईश्वरवुड वहाँ गॉस्पल अर्थात् गॉस्पल ऑफ श्रीरामकृष्ण का पाठ करके सुनाते हैं। यही स्वामी निखिलानन्द कृत कथामृत का अंग्रेज़ी अनुवाद है।

एक घण्टा पाठ होता है। पाठ चलते समय स्वामी प्रभवानन्द उपस्थित रहते है – किसी की यदि कोई जिज्ञासा हो, उसका उत्तर देने के लिए।

किन्तु पाठक महाशय पहले से लेखक होने पर भी पेशे से थे संवाददाता, किन्तु तब ईश्वर-भक्त नहीं थे। Wire correspondent (तार संवाहक) बनकर द्वितीय महायुद्ध के युद्धक्षेत्र में गए थे। वहाँ हत्यालीला की वीभत्सता दर्शन कर उनके जीवन में गम्भीर वितृष्णा आई। बचे रहने की और सार्थकता देख नहीं पा रहे थे। वे आत्महनन करने के लिए स्थिरसंकल्प

हो गए। यह बात उनके कोई प्रियजन जान पाए, जो थे ठाकुर के भक्त। वे स्वामी प्रभवाननद के पास जाकर रो पड़े। प्रभवानन्द जी बोले, "हमारे ठाकुर तो कोई miracle (चमत्कार) दिखाते नहीं। तब भी मैं ईशरवुड के साथ बात करके देख सकता हूँ।"

बात करके उन्होंने जो किया वह miracle (चमत्कार) से कम कुछ नहीं है। युवक का टूटा मन फिर जुड़ गया। खोया मानसिक भारसाम्य उन्होंने फिर पा लिया। ईश्वर-विश्वासी हो गए, रामकृष्ण विवेकानन्द के भक्त हो गए।

घटना क्या सत्य है? जो सुनी है। प्रेमा को कही वह बात। प्रेमा माने ब्रह्मचारी प्रेमचैतन्य। जो गृही जीवन में थे डॉक्टर जॉन येल। इसी नाम से ही एक ग्रन्थ प्रकाश किया है— 'A Yankee with the Swamis'। ब्रह्मचर्य-दीक्षा लेने के लिए बेलुड़ आए। अगले वर्ष अर्थात् 1963 में अर्थात् स्वामी विवेकानन्द की जन्मशतवार्षिकी पर फिर भारत में आए शतवर्ष उत्सव में योग देने और अपनी संन्यासदीक्षा ग्रहण करने। संन्यास के बाद नया नामकरण हुआ स्वामी विद्यात्मानन्द।

इस यात्रा में उनके संग आए वही पाठक महाशय। दोनों जन मिलकर कामारपुकुर, जयरामबाटी, हालदार पुकुर इत्यादि घूम-घूम कर देखते और फोटो खींचते हुए घूमते।

ये सब जगह रामकृष्ण के समय जैसी थी, अब भी प्रायः उसी प्रकार की हैं तभी उनका फोटो खींच लेते। ये पुस्तक रूप में बाहर हुई। छवियाँ प्रेमचैतन्य की हैं, और उसकी परिचिति कथा लिखी ईशरवुड ने।

ईशरवुड के सम्बन्ध में जो सुना है, वह क्या सत्य है? प्रेमा से जिज्ञासा की। प्रेमा बोले, "निज ही जिज्ञासा करो ना उनसे।" "क्या कहा? बड़ी व्यक्तिगत जो बात है।" उसने ही सब व्यवस्था कर दी। एक सन्ध्या में सिर्फ मैंने और उन्होंने एक कमरे में एकान्त में बात की।

नाना विषयों पर बात हुई। प्रथम साधारण भाव से वस्तुवाद और भाववाद विषय पर। उसी प्रसंग में mysticism या रहस्यवाद की बात आई। ॲल्डस हक्सले के रहस्य दर्शन और अभिज्ञता की बात बोले ईशरवुड। उनके दो प्रासंगिक ग्रन्थ हैं 'The Doors of Perception (द डोर्ज़ ऑफ पर्सेप्शन)' एवं 'Heaven and Hell' (हैवेन एण्ड हैल) की बात।

उसके बाद विशेषभाव से बात हुई रामकृष्ण-विवेकानन्द के दर्शन और भावधारा के विषय में। रामकृष्ण के शिष्यवर्ग जो अनेक ईसाई धर्मावलम्बियों को रामकृष्ण के मतवाद में दीक्षित कर पा रहे हैं, यह व्यापार मैक्समूलरके लिए बहुत ही विस्मयकर था, प्रायः अविश्वास्य मन में लगता था। किन्तु ईशरवुड बोले, ''पश्चिमी मनुष्य की क्षुधार्त्त अतृप्त विक्षुब्ध आत्मा के पास रामकृष्ण-शिष्यों के द्वारा प्रचारित आध्यात्मिक शिक्षा ऐसी एक भाव की बाढ़ की तरह आ पहुँची कि कोई बाध्यबाधकता द्वारा शृंखलित नहीं होती है।''

उन्होंने इसके बाद particular (विशेष) आलोचना की श्रीरामकृष्ण, रामकृष्ण के शिष्यवर्ग और श्रीरामकृष्ण आन्दोलन विषय पर उनके प्रकल्पित ग्रन्थ को लेकर। श्री रामकृष्ण आन्दोलन के पक्ष में श्री म रचित कथामृत की अपरिहार्यता की बात भी उस दिन कही उन्होंने। सब मिलाकर सुदीर्घ मनोज्ञ एक आलोचना हुई।

हॉलिवुड मठ छोड़कर आते समय विदाई लेना दुष्कर हो खड़ा हुआ। साधु, ब्रह्मचारी, छोटे, बड़े, सब निर्विशेष आश्रमवासियों से इतना स्नेह, प्यार पाया था कि वह कहा नहीं जा सकता। अध्यक्ष स्वामी प्रभवानन्द जी की तो बात ही क्या, किसी के भी पक्ष में अठारह दिन के एक संग काटने से (उत्पन्न) आकर्षण-प्यार तो कम होने का सवाल ही नहीं है। वह सब काट कर चला जा रहा था।

प्रेमा बोले, ''आगामी वर्ष स्वामी विवेकानन्द के जन्मशतीवर्ष पर आने पर मिलना होगा। इस बार भारत वर्ष हमारी जाने की इच्छा है। कौन जाने तब तुम भारत के किस प्रान्त में posted (नियुक्त) होंगे।''

''वह क्यों नहीं? वाह, वह होने से अच्छा होगा। जहाँ भी रहूँगा, भारत में आए हो, जान कर ही आनन्द से कूद पड़ूँगा। अहो भाग्य मानकर।''

मठ के सह-अध्यक्ष स्वामी वन्दनान्द ने विदाई काल में अप्रत्याशित भाव से हमारे गुरदेव का स्मरण करवा दिया।

कहा, ''अनेक दिन से हूँ इस देश में। इस बार देश लौटने के लिए मन व्याकुल हो रहा है। ज़रा कहिएगा बेलुड के senior (वरिष्ठ) साधुओं से।''

''जगबन्धु महाराज को भी कहिएगा मेरी बात।''

"स्वामी वन्दनानन्द कहते ही पहचान पाएँगे? "

"पहचान पाएँगे। कहिएगा कर्नाटक के मैजिस्ट्रेट थे नारायण आयंगर, छोड़ कर साधु हो गए, उनके नाती।

"और सब से अधिक जिस कारण से याद कर पाएँगे वह है, मैंने उनसे उपनिषद् पढ़ा है। वह उन्हें निश्चय ही याद होगा।"

मैं समझ गया कि कितने मोटे पेड़ के तने से मेरी नौका बन्धी है।

कई वर्ष बाद वन्दनानन्द जी देश में लौट आए एवं बेलुड़ मठके साधारण सम्पादक हुए। प्रभु महाराज तब मठ के प्रेजिडेण्ट थे। प्रभु महाराज भी जगबन्धु महाराज को अच्छी तरह पहचानते थे। मुझे देखते ही उनकी बात पूछते, "कैसे हैं? अब कहाँ हैं, इत्यादि।"

जैसे-जैसे खबर मिलती, शिष्यों के संग गुरुदेव जो नित्य योगायोग रख कर चलते, कह देता। नियमित पत्रालाप चलता। और वे सब चिट्ठियाँ तो केवल चिट्ठियाँ नहीं हैं, वे हैं जैसे आध्यात्मिक testament– प्रगाढ़ प्रेरणा और गम्भीर प्रशान्ति का उत्सस्वरूप– "श्री श्री ठाकुर आपका परम कल्याण करें। वे भक्तों के पास सदा रहते हैं और सुबुद्धि दिए चलते हैं। यह बात की बात नहीं, महा सत्य है। दोषे गुणे मानुष। ठाकुर तो जानते हैं। उनके भरोसे की वाणी है, 'मुझे पकड़ो। मैं बाकी सब कर दूँगा।' वे अहैतुक कृपासिन्धु हैं। वे मंगलमय नहीं हैं तो क्या हैं? हम सब उनकी सन्तान यह भी जानते हैं कि वे किसी का दोष नहीं लेते। किन्तु गुण का एक तिल होने पर भी उसका ताड़ बना देते हैं। यह विश्वास होने पर ही जीवन्मुक्ति का आनन्द है। तब भीतर शान्ति है, मरण-मुख में भी। आप सब ठाकुर के खानदानी भक्त हैं। कोई भी भय नहीं है। सकल भार ठाकुर का है। उनका नाम-प्रचार और उनके काम के लिए आए हैं। वे ही सब करेंगे।"

फिर शिकागो। इस बार अमरीका के पश्चिम उपकूल से दक्षिण के एल पासो टेक्सस होकर शिकागो एयरपोर्ट पर प्लेन बदल कर सिराक्यूज, न्यूयॉर्क। न्यूयॉर्क से भारत गामी एयर इण्डिया का प्लेन पकड़ा।

शिकागो एयर पोर्ट पर पहुँचते ही स्वामी विश्वानन्दजी को उनके आदेश पर टेलिफोन से बात कही। रात बहुत नहीं हुई थी, दस के लगभग। किन्तु अनेकक्षण बाद उत्तर मिला। ब्रह्मचारी जन बोले, "स्वामी अस्वस्थ हैं, वे बात नहीं कर सकेंगे।"

कहा, "उन्होंने जो मुझे कड़ाई से कहा था कि एयरपोर्ट से उनको अवश्य-अवश्य फोन करूँ।"

ब्रह्मचारी बोले, "तुम रुको, देखता हूँ।"

स्वामी जी उठ आए फोन तक।

कहा, "दिलीप, मैं बड़ा अस्वस्थ हूँ, दमे के दौरे के कारण बात कर नहीं सकता, तुम रमा– हरिदास को फोन करो। और देश निरापद पहुँच कर मुझे और एक खण्ड श्री म दर्शन अवश्य भेजना सर्फेस मेल से। भूलना नहीं। ठाकुर तुम्हारा कल्याण करें। जगबन्धु महाराज को मेरा प्यार देना।"

मन वेदना से भर उठा।

उन्होंने फोन मिलते ही उत्तर दिया, "वे फोन दे ही नहीं रहे थे, ऐसा क्यों, रात तो एकदम अधिक हुई नहीं?" कहा, "स्वामी जी को फिर श्वास का कष्ट हो रहा है। बात करते ही उनको कष्ट होता है। इस बीच जितने दिन अच्छे होते हैं, गला ज़रा परिष्कृत रहता है, सकाल वेला उठते ही लक्ष्मी को फोन करके तुम्हारा गाना गाएँगे।"

"मेरा कौन-सा गाना?"

रमा बोलीं, "वही जो, 'जय रामकृष्ण रामकृष्ण बोलो रे आमार मन (जय जय रामकृष्ण बोलो रे मेरे मन)'," असली सुर करके गाया!

इसी बीच हरिदास ने स्त्री के हाथ से फोन खींच कर अगला पद गाना आरम्भ कर दिया, "युग अवतार जिनि पूर्ण ब्रह्मसनातन (युग अवतार जो हैं पूर्ण ब्रह्मसनातन)।"

उनके हाथ से फोन खींच कर स्त्री ने फिर गाया। पति-पत्नी में इस तरह चलता रहा। लाइन के उस ओर से पति-पत्नी ने बारी-बारी से, और इस ओर से, हम ने।

अभिनव द्वैतसंगीत!

●

‘Bada Ghara ra Dasi’
A Rich Man's Maid

Devdas Chhotray

[Veena Chhotray & Devdas Chhotray are married for nearly fifty years. Veena is from Chandigarh, while Devdas is from the city of Cuttack in Odisha. They are both members of the Indian Administrative Service.

Both had received the love and grace of Swami Nityatmananda, the Founder President of Sri Ma Trust Chandigarh. Veena was an initiated disciple of Swamiji and Devdas was the uninitiated, wonder-eyed entrant to the enchanting world of Ramakrishna's poems and parables. When the unsure nonbeliever in him was fumbling, Swamiji asked him to read Christopher Isherwood's 'Ramkrishna and his Disciples'. 'The world is a living fire', he said 'but no initiation is required for you, so long you keep walking holding Veena's hand.'

Ramakrishna would always advise his non-celibate disciples to live in their households as a 'rich man's maid', one who acts out his worldly chores with no less attachment, but knowing fully well that their real home is elsewhere. Veena was overwhelmed by this metaphor, as a basic key to living.

These reminiscences describe their early awakenings as a married couple.]

Rishikesh

Veena had asked me to go to Tulsi Math and meet Swamiji. I was in Mussouri at that time. In October 1971, the first half of our sandwiched professional course was over and the Mussouri sky was autumnal with my friend Amit Kiran Deb. who later became Chief Secretary of West Bengal, reached Rishikesh in a passenger bus. It was early afternoon. The sun of Rishikesh was still a little warm.

As we reached Tulsi Math Swamiji had gone out. We waited there. He stayed in a rectangular room. I am unable to recall if the Ganges was visible through its window. On one side a simple wooden cot, and in another corner a writing table full of books and writing material. On a cloth line drawn from one side to another some saffron coloured clothes and undershirts of a sanyasi were drying.

Partly out of courtesy and partly devotion, I took out a few from the dried clothes. I had just started folding them when Swamiji arrived. A monk with a smiling face,well built body and tender gaze: on our bowing, he immediately made us feel free from any inhibition and put us to ease.

Seeing my clumsy attempt to fold his clothes, he scolded me with affection and said, " When you want to do something, you must first learn it well yourself "And then the dexterity and ease with which he quickly folded the remaining clothes, soon made my lack of practice obvious.

We were in that almost empty household till the evening. Swamiji kept narrating to us his experiences as a monk at the Devghar and Madras Missions. However, the most overwhelming in his consciousness was the predominance of 'Sri M Darshan'. The writing of Sri M Darshan 'was going on. Swamiji told us how in Shri M's words there was a synthesis of Upanishads along with the dramatic excellence of Shakespeare., which needed to be reflected by appropriate referencing. However, all Shri M's erudition dissolved in Shri Ramkrishna's intuitive insights.

I was just not in a position to fathom the depth of all this at that time. Even Shri M’s name seemed a bit odd. I would only wonder how like Kafka naming his main character in 'The Trial' simply as “K”, Shri Mahendra Nath Gupta had also assumed his name just as “M”. I have not found another such example of obliterating one’s identity even to the extent of one's name.

It was evening now. We had not by then got into the habit of having tea at any odd time. I am not able to recollect how Swamiji extended his hospitality to us. But he took me and Amit to the bank of the Ganges and showed us the unforgettable evening Ganga Aarati of Rishikesh. I have seen the hesitant journey of lighted lamps perched on banana stems in the dawn of Kartik Purnima at Mahanadi, but the grandeur of the evening Aarati on the strong waves of the vast bank of the Ganges lingered in my memory for the whole life.

After the Aarati was over, we made pranam to Swamiji and bid adieu, as we had to go back to Mussouri the next morning

Chandigarh

My next meeting with Swamiji took place the following year in Chandigarh at the residence of his foremost disciple Smt. Ishwar Devi Gupta, in sector 18.

Veena and I were visiting Chandigarh for some time. Once on her return after meeting Swamiji she told me that he had given her Deeksha. I asked her," What is Deeksha?" She replied, "Henceforth Swamiji is my Deeksha Guru. He has whispered in my ears Deeksha Mantra, which will be my life long protective gear". As I looked at her with curiosity,she smiled and said, "Swamiji has also said to keep this Mantra a secret for my whole life. He specifically cautioned me that Devdas would compel you to know about this Mantra, but you are not to disclose it".

No one had taken Deeksha in our family and there was no Guru-Disciple tradition. How did Swamiji figure out that I would be so inquisitive to know what the Deeksha Mantra was.

Talks of dispassion and God realization went on at the residence of the Guptas. Swamiji was the prime source behind all inspiration He would reiterate how just like Vivekananda, his idol Shri M. was able to realise God,

despite being a householder, and had the firm faith that God exists. By that time the writing of the 16 Volume Shri M Darshan was almost complete. But footnotes and Explanation work was still on. Swamiji has portrayed Shri M. as an exponent of Indian culture and selfrealization. However, though Swamiji tried his level best, the analysis of Shri M's vast intellectualism was not so simple. Its Hindi translations were being done by Smt. Ishwar Devi and the English translations had been taken up by her husband, Professor, Dr. Dharm Pal Gupta.

Deeksha

During our stay at Chandigarh, once Swamiji called me all alone and said, "Babu, if you want to take Deeksha, you may take it." Without a moment's thought I bluntly told Swamiji, "but I am not interested in taking Deeksha". Swamiji, however, gave me time to reflect. After silence for a while in his characteristic quiet, unruffled voice he said, "It would have been good had you taken it. Veena has already taken. Actually I never ask anybody for it. I am only telling you. Having taken Deeksha both of you, would have together lived your life. And remember one thing, this world is not always full of happiness, as you are feeling now. The world is like a living fire-place."

At that time the heat-wave of North India scorched me more than the world itself. Sitting in Swamiji's comfortably shaded room fitted with an electric fan, I started to argue. I began, "Swamiji, what would be the use of taking Deeksha?" He said, "The supreme aim of human life is to realize God. Your Deeksha Guru would take you on that very path." I posed the question, "Does God exist?" He said, "God exists. Just as you and I are present here." Not to be deterred I persisted, "Have you seen God?" Swamiji answered with his same gentle smile, "Babu, neither you are Vivekanand, nor I am Ramkrishna. I have never seen

God like they had seen. But I have the firm faith that God exists. And if you can surrender all your sorrows and tribulations to God, you would become liberated even while living in the world.”

There was a common talk of Existentialism at that time just like the Beatles. I too, in my own half baked way, had done some readings from Nietzche, Sartre, and Albert Camu. In the same arrogance I hurled the question at Swamiji, “But who is going to transfer all my desires, all my problems? I alone, isn't it? And if instead of making such a transfer to God I give away all my responsibilities to a telegraph pole or a Coca Cola bottle, will I not experience the same liberation? This is just a matter of my own faith. Who so ever I have faith in, that is God.” To put a stop to these useless arguments, Swamiji said, "Look Babu, I am quite tired. At my more than eighty age I do not have patience to deal with your arguments sprung after reading a couple of English books. I am telling you about an English book, Christopher Isherwood's ‘Ramkrishna and his disciples’. Read it and decide for yourself.

I used to read the publications of Christopher Isherwood in the magazine 'Encounter' at times and had stuck to my memory. I could not think that there could be a magazine of Blity than "Encounter'. So when Swamiji mentioned Christopher Isherwood's I felt as if in a familiar and comforting territory. How in a unique way Swamiji had said, “you English educated boys are not going to believe anything unless you get it from Englishman through an English book”. That very week I bought a copy of Isherwood’s ‘Ramakrishna and His Disciples’ (1965) from the Ramakrishna Mission at Chandigarh. The price of this book published by the mission was only Twelve Rupees.

We are an Odia family. In our home Ramakrishna had not come down from the calendar and made his entry in the temple. My mother used to worship our family deities of

Raghunath and Durga. Though the Ramakrishna Mission at Bhubaneswar had been established in 1919 with the initiative of the first president of the Mission, Swami Brahmananda; but a small worship place at Cuttack, near the bank of Mahanadi river has been started only recently. Even though Veena had given me the English Gospel soon after our meeting, and I had also read it in portions: it was only from Isherwood's book that I learnt clearly about Ramakrishna. What touched me most in this book was why and how Ramakrishna deserved to be a 'Paramhans' and an 'Incarnation'.

Last Meeting

After the army attachment is over, ‘Bharat Darshan’ of the IAS probationers is supposed to begin. At that time they live in a train compartment, as if in a house, and go around the whole country. But in the year 1971 the 'Bharat' Darshan' of our batch had got postponed for one year because of the war. So I had come to Veena in Chandigarh, Swamiji was also in Chandigarh. Veena told me another amazing happening with her. After returning from the Coronation hospital, she had suffered a severe Insomnia. Be it day or night she would wake up just after a few minutes of sleep and would toss restlessly in the bed without getting a wink of sleep. One day when she met Swamiji, she told him that she needed consultation with a psychiatrist. Swamiji gave a gentle laugh and with a distant look in his eyes muttered, “Where would there be a better psychiatrist than at this place.” By his own hands Swamiji made a bed for Veena by spreading a saffron colored sheet, a pillow and a blanket on a wooden cot in the verandah in front of his room. It was the cold month of January. He asked Veena to sleep there. The lunch had been over by that time. In the same verandah Veena kept on sleeping restfully like a child till the dark of the evening in the comforting proximity of Swamiji. And from that day she was freed from the curse of Insomnia.

In the IAS, I was first allotted the union territory cadre and Veena was allotted to the Bihar cadre. After our marriage we applied for being allotted to the same cadre. The Government of India approved it with the consent of the Government of Bihar.

Mr. P.K.J. Menon, the Secretary Department of Personnel, Government of India had returned to Bihar as the Chief Secretary. He was well versed with rules on both the sides. Therefore there was no difficulty or delay in the change of my cadre to Bihar. The Government of Bihar posted both of us to Arrah, the headquarter of old Shahabad. The Naxlites had a formidable presence by that time in the Bhojpur region. The front pages of the news papers were galore with details of gruesome 'chourikand'.

Before leaving Chandigarh, once I went to Swamiji all by myself. He in his usual calm and sweet manner made inquires about our welfare. He knew about our going to Bihar. I opened up and said clearly. "Swamiji, before going I want to take Deeksha from you. I have come ready for it." Without being at all perturbed Swamiji held my hand and made me sit close to him. He said, "Babu, you do not need it anymore Deeksha is not necessary for you". I felt at a loss. Was he making fun of me or had he felt resentful because of my earlier obstinacy. Swamiji gently caressed my back and blessing as if taking away all my fears, said, "Joys and sorrows are a part of life. You just keep holding Veena's hand all the time. No Deeksha needed for you." That was my last meeting and the last talk with Swamiji.

●

स्वामी विवेकानन्द

- घर का नाम : नरेन्द्रनाथ दत्त।
- जन्म : 12 जनवरी, सन् 1863 ईसवी।
- स्थान : सिमला मुहल्ला, कोलकता।
- माता-पिता : श्रीमती भुवनेश्वरी देवी और विश्वनाथ दत्त।
- शिक्षा : बी.ए. दर्शनशास्त्र में विशेष रुचि।
- गुरु : श्रीरामकृष्ण परमहंस।
- बेलूड़ मठ की स्थापना : फरवरी, 1898 ईसवी।
- महासमाधि : 4 जुलाई, 1902 ईसवी।

Hold on Yet a While, Brave heart

Swami Vivekananda

[This poem has been taken from complete works of Swami Vivekananda, Vol. 4, page 389]

If the sun by the cloud is hidden a bit,
If the welkin shows but gloom,
Still hold on yet a while, brave heart,
The victory is sure to come.
No winter was but summer came behind,
Each hollow crests the wave,
They push each other in light and shade;
Be steady then and brave.
The duties of life are sore indeed,
And its pleasures fleeting, vain,
The goal so shadowy seems and dim,
Yet plod on through the dark, brave heart,
With all thy might and main.
Not a work will be lost, no struggle vain,
Though hopes be blighted, powers gone;
Of thy loins shall come the heirs to all,
Then hold on yet a while, brave soul,
No good is e'er undone.
Though the good and the wise in life are few,
Yet theirs are the reins to lead,
The masses know but late the worth;
Heed none and gently guide.
With thee are those who see afar,
With thee is the Lord of might,
All blessings pour on thee, great soul,
To thee may all come right!

योगी-चक्षु

श्री रामकृष्ण (मणि के प्रति)— योगी का मन सर्वदा ही ईश्वर में रहता है, सर्वदा ही आत्मस्थ। चक्ष् अर्धनिमीलित, देखते ही पता चल जाता है। जैसे पक्षी अण्डे सेता है— सारे का सारा मन उसी अण्डे की ओर। ऊपर नाममात्र को देख रहा है।

-'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' तीसरा भाग, दूसरा खण्ड, पहला परिच्छेद।
24 अगस्त 1882

Teachings of the Direct Disciples

[This extract has been taken from the book 'What the Disciples said about it', p. 31 by Edith D. Tipple, published by Advaita Ashrama.]

ON ANXIETY

Swami Shivananda :

Sorrow, bereavement, pain and anguish— this is what the world consists of. Real joy or peace is very rare in this world, and this round of birth and death that is ours, no one can know.

Hari Maharaj (Swami Turiyananda) used to say: The body knows its pain; O my mind, be at peace! What a beautiful statement! Pain and anguish belong to the body. He who dwells within the body is not affected by them: He is Bliss itself.

There is no need to be anxious about it. Whatever be the Lord's pleasure is definitely for the good of all.

Swami Premananda :

Throw away all fear and anxiety. Think, "We are the children of God", then weakness will find no loophole to creep in.

Away with all quarrels and factions. We have come here for only a very short time; why such anxiety for tidying things up? Let others do as they like.

Fear; worries, and anxieties dwell where there are hypocrisy, evil motives, and selfishness.

Swami Turiyananda :

Just see! Our God is only a verbal affair. A little meditation, a little Japa - this is a poor sort of life. The heart

must burst hungering for Him. An intense anguish must fill it and life should seem to go out without Him - only then it will be right.

A sea is no more than a mud-puddle when you have crossed it. All anxiety and trouble are at the initial stage.

Swami Ramakrishnananda :

Actually very few of us believe in God all the time. How do we know this? Because we allow anxieties and fears to arise in our minds. All your anxieties and worries come from egotism and selfishness. Let go your little self and they will disappear.

When worries and perplexities rise in our mind it shows we have ceased to believe in God and in that He is caring for us. If we have real faith in God, we can never grow anxious.

Blessed is the man who has faith. He is the happiest of all men because he is free from all anxiety.

You should not be anxious of the future. Whatever takes place here, on this earth, is for our good, for all things are disposed by God. In the meantime, it should be our duty to be dutiful.

It is through sheer ignorance that we bring on ourselves all sorts of groundless anxieties. To work you have the right, but not the fruits thereof. The leader should be a man having not the least egoism. Not "I" but "Thou"— this should be his motto. Remember this and go on working and you are sure to come out victorious. Do not try to have everything done all at once.

•

ईश्वर को साथ रखना

स्वामी सोमेश्वरानन्द

[यह सदुपदेश माधवानन्द जी महाराज द्वारा दीक्षित स्वामी सोमेश्वरानन्द जी की पुस्तक से लिया गया है।]

ईशोपनिषद् में आनन्द-प्राप्ति का सहज मार्ग बताया गया है। उसके प्रथम श्लोक में ही— सभी कुछ में ईश्वर को अनुभव करने की चेष्टा है। आप जिस व्यक्ति को प्रेम करते हैं, उसके अपनुपस्थित रहने पर भी उसकी पुस्तकें, कपड़े, कुर्सी, फोटो आदि देखकर आपको आनन्द मिलता है। उसी तरह विभिन्न वस्तुओं— वृक्ष, मेज, फूल, आकश, नदी इत्यादि देखकर ईश्वर का अनुभव करने की चेष्टा से आनन्द मिलता है।

सबका ही मूल स्त्रोत ईश्वर या ब्रह्म हैं। श्रीरामकृष्ण की भाषा में— लोटा भी ईश्वर, थाली भी ईश्वर। उन्होंने उदाहरण देकर समझाया है— मिट्टी से निर्मित अनेक प्रकार के खिलौने, मिट्टी का हाथी, मिट्टी का घोड़ा, मिट्टी का पक्षी और मिट्टी का मनुष्य। देखने में सब अलग-अलग, विभिन्न नाम-रूप के हैं, किन्तु जब तुम हाथ में उठाते हो, तब तुम मिट्टी को ही पकड़ते हो। ठीक उसी तरह यह जीव-जगत् विविध नाम-रूप का है, किन्तु इसके सारतत्व हैं ईश्वर!

क्या ईश्वर को अपना आत्मीय जन समझकर चिन्तर कर सकते हैं? अपनी माँ समझकर? बिल्कुल अपना आत्मीय जन समझकर? अपने घर में या मेज पर किसी भी देवी का चित्र रखिए। कार्यालय जाने से पूर्व उन ईश्वर को प्रणाम कीजिए, किन्तु लौटकर क्या आप उनसे भेंट करते हैं? घर में अन्य सभी लोगों से मिलते हैं किन्तु आप भूल जाते हैं कि वे जगज्जननी भी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं कि कब उनकी सन्तान वापस आएगी? किसी संकट में पड़े बिना वह अच्छी तरह वापस तो आयी? इसलिए जाइए, उनसे भेंट कीजिए। हँसकर कहिए— माँ मैं वापस आ गयी। बाहर जाते समय उनका चित्र अपनी जेब में रखिए। कुर्सी पर बैठकर, आँखें बन्द करके उनसे बातें कीजिए। पति और बच्चे कार्यालय या विद्यालय में हैं।

लगभग प्रात: 11 बजे आप कुछ खरीदने बाहर जाती हैं। जाने से पहले पूजा घर में श्री श्री माँ के चित्र की ओर देखकर सहास्यमुख कहिए— माँ, थोड। दूकान पर कुछ लेने जा रही हूँ। एक घण्टे में ही आ जाऊँगी। घर में सास या पति के रहने पर जिस तरह बाहर जाने के पहले कहती हैं, वैसे ही कहिए। ईश्वर को अपने परिवार का सदस्य बना लीजिए।

इस प्रकार ईश्वर को अपना आत्मीय बना लीजिए। उन्हें चित्र मात्र ही मत समझिए। उन्हें जीवन समझिए। परिवार के एक सदस्य के रूप में उन्हें देखिए। उनके चित्र के साथ बातें कीजिए। नित्य उनके साथ कुछ समय आत्मीय ढंग से बातें कीजिए। आप जहाँ-कहीं भी जाती हैं, कल्पना करें कि वे भी आपके साथ घूम-फिर रहे हैं।

यही जो प्रेमभाव है, यही आपके मन में आनन्द का भाव लाएगा।

•

श्री 'म' ट्रस्ट के प्रकाशन

1. **श्री 'म' दर्शन**

   बंगला संस्करण— भाग 1 **से** 16 **— स्वामी नित्यात्मानन्द**

   श्री 'म' दर्शन महाकाव्य में ठाकुर, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द तथा अन्यान्य संन्यासी एवं गृही भक्तों के विषय में नूतन वार्त्ताएँ हैं। और इसमें है कथामृतकार श्री 'म' द्वारा 'कथामृत' के भाष्य के साथ-साथ उपनिषद्, गीता, चण्डी, पुराण, तन्त्र, बाइबल, कुरान आदि की अभिनव सरल व्याख्या।

2. **श्री 'म' दर्शन**

   हिन्दी संस्करण— भाग 1 **से** 16

   श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा बंगला से यथावत् हिन्दी-अनुवाद।

3. **श्री 'म' दर्शन**

   अंग्रेजी संस्करण**—** ('M.'— **The Apostle and the Evangelist**)

   श्री 'म' दर्शन ग्रन्थमाला का अंग्रेजी-अनुवाद प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता ने 'M.'— **The Apostle and the Evangelist** नाम से किया है। ट्रस्ट के पास (1-16) भाग उपलब्ध हैं।

4. **Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial**

   प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता और पद्मश्री श्री डी०के० सेनगुप्ता द्वारा अंग्रेजी में सम्पादित बृहद् ग्रन्थ, जिसमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण, 'कथामृत', श्री 'म' और 'श्री म दर्शन' पर श्रीरामकृष्ण मिशन के संन्यासियों समेत अनेक गणमान्य विद्वानों के शोधपूर्ण लेख हैं।

5. **A Short Life of Sri 'M.'**

   स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के मन्त्र-शिष्य और श्री 'म' ट्रस्ट के भूतपूर्व सचिव, प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में लिखी गई श्री 'म' की संक्षिप्त जीवनी।

6. **Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita**

   प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा लिखित श्री 'म' के जीवन तथा 'कथामृत' पर शोध प्रबन्ध।

7. श्री श्री रामकृष्ण कथामृत (हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 5)

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त (श्री म) ने ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के श्रीमुख-कथित चरितामृत को अवलम्बन करके ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कोलकता-700 006 से 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' का (बंगला में) पाँच भागों में प्रणयन एवं प्रकाशन किया था। इनका बंगला से यथावत् हिन्दी अनुवाद करने में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने भाषा-भाव-शैली— सभी को ऐसे सरल और सहज रूप में संजोया है कि अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थमाला मूल बंगला का रसास्वादन कराती है।

8. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita (English Edition)

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के हिन्दी-अनुवाद से प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा कथामृत का अंग्रेजी-अनुवाद। सभी पाँचों भाग प्रकाशित।

9. नूपुर (वार्षिक स्मारिका)

श्री म ट्रस्ट के संस्थापक और हम सब के पूजनीय गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी के 101वें जन्मदिन पर उनकी स्मृति में 'नूपुर' नाम से सन् 1994 ईसवी में इस स्मारिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। उसी स्मारिका ने अब वार्षिक पत्रिका का रूप ले लिया है, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त ठाकुर रामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा, श्री म, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी नित्यात्मानन्द, 'श्री म दर्शन' आदि के बारे में प्रचुर सामग्री रहती है। साथ ही 'कथामृतकार श्री 'म' के द्वारा 'श्री 'म' दर्शन' में कही उन बातों को भी प्रकाश में लाया जाता है, जो 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' में नहीं हैं। नूपुर-2018 के प्रथम भाग में श्री 'म' ट्रस्ट का इतिहास वर्णित है अंग्रेज़ी भाषा में।

10. लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ (स्मारिका)

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के 100वें जन्मदिवस पर सन् 2015 में यह स्मारिका प्रकाश में आई।

●